ISSN: 2348-5558

# शिक्षा संवाद

शैक्षिक विमर्श एवं साहित्य की पत्रिका

वर्ष: 10/ अंक: 02/ जुलाई -दिसम्बर, 2023

सम्पादकीय सलहाकार: डॉ. चाँद किरण सलूजा
सम्पादक: डॉ. वीरेंद्र कुमार चंदोरिया
सह- सम्पादक: डॉ.पूजा सिंह

संवाद शिक्षा समिति, दिल्ली का प्रकाशन

# शिक्षा संवाद

शैक्षिक विमर्श एवं साहित्य की पत्रिका

ISSN: 2348-5558

(Peer-Reviewed)
Refereed Journal

अर्ध-वार्षिक

वर्ष: 10/ अंक: 02/ जुलाई –दिसम्बर, 2023

प्रकाशन की तिथि
31 दिसम्बर, 2023

सम्पादकीय सलहाकार
डॉ. चाँद किरण सलूजा

सम्पादक
डॉ. वीरेंद्र कुमार चंदोरिया

सह- सम्पादक
डॉ. पूजा सिंह

**संवाद शिक्षा समिति, दिल्ली का प्रकाशन, दिसम्बर-2023**

पत्रिका के सर्वाधिकार शिक्षा संवाद के पास है। इस पत्रिका का गैर-व्यावसायिक उपयोग किया जा सकता है। ऐसा करते हुए सम्पादक व प्रकाशक का ज़िक्र करना ज़रूरी है। इसके अलावा किसी अन्य उपयोग के लिए, मसलन, पाठ की रीमिक्सिंग, उसमें बदलाव या उसे आधार बनाते हुए कुछ करने के लिए प्रकाशक व सम्पादक से अनुमति लेना ज़रूरी है।

# शिक्षा संवाद

शैक्षिक विमर्श एवं साहित्य की पत्रिका

वर्ष: 10/ अंक: 02/ जुलाई –दिसम्बर, 2023



**संरक्षक:** अध्यक्ष, संवाद शिक्षा समिति

**सम्पादकीय सलहाकार**: डॉ. चाँद किरण सलूजा

**सम्पादक:** डॉ. वीरेंद्र कुमार चंदोरिया

**सह- सम्पादक:** पूजा सिंह

**सम्पादन मण्डल** : सदस्य

प्रो. लोकनाथ मिश्रा, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, मिज़ोरम

डॉ. आभा श्री, सह-आचार्या,मिज़ोरम विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. तुषार गुप्ता, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

डॉ. प्रवीण कुमार, श्री राम इंस्टीट्यूट ऑफ टीचर एडुकेशन, दिल्ली

डॉ. रितेश सिंह, इंस्टीट्यूट ऑफ होम इक्नॉमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. हेदर अली, शिक्षा संकाय,मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, तेलंगाना



**संपर्क**

**शिक्षा संवाद**

RZ-673/135, गली न. 19A, साध नगर, पार्ट -2, पालम कालोनी, नई दिल्ली 110045.

दूरभाष - 09868210822. (सम्पादक), ई मेल - sheakshiksamwad@gmail.com



**सदस्यता राशि**

| | व्यक्तिगत | संस्थागत |
|---|---|---|
| एक प्रति | 250 | 350 |
| वार्षिक (2 प्रतियाँ ) | 400 | 600 |
| दो -वर्षीय (4 प्रतियाँ ) | 800 | 1200 |
| तीन वर्षीय (6 प्रतियाँ) | 1000 | 1600 |
| आजीवन (प्रकाशन तक) | 15000 | 20000 |

**शिक्षा संवाद की सदस्यता के लिय केवल बैंक ड्राफ्ट या चेक के माध्यम से 'संवाद शिक्षा समिति' दिल्ली के नाम भेजें।**

आवरण चित्र : पूजा ने इंटरनेट और केनवा की मदद से बनाया है।

# पाठकों एवं लेखकों हेतु दिशानिर्देश एवं शोध नियमावली

शिक्षा संवाद

शैक्षिक विमर्श एवं साहित्य की पत्रिका

**'समकक्ष व्यक्ति समीक्षित जर्नल'**

(PEER REVIEWED-REFEREED JOURNAL)

ISSN: 2348-5558

**शोध आलेख भेजने संबंधी ज़रूरी निवेदन**

शिक्षा संवाद अर्ध-वार्षिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन संवाद शिक्षा समिति, नई दिल्ली करती है। एक वर्ष में दो सामान्य अंक 30 जून, और 31 दिसम्बर को प्रकाशित किए जाते हैं। रचना प्रकाशन हेतु स्वीकृत हुई या नहीं इसकी जानकारी प्रकाशन की तारीख के पंद्रह दिन पहले ही दी जाती है इससे पूर्व नहीं। ज्यादा जानकारी के लिए नीचे कुछ सामान्य सूचना इस प्रकार है-

(1) **आलेख का क्षेत्र:** शिक्षा और साहित्य

(2) **प्रकाशन का स्वरुप:** हमारी पत्रिका वर्तमान प्रकाशन तक केवल प्रिंट वर्जन में ही उपलब्ध है। हम छापकर कोई या किसी भी प्रकार का पीडीऍफ़ वर्जन भी नहीं भेज पाते हैं। सदस्यता के अनुसार तथा मांग के अनुरूप ही प्रतियां हम छपवाते हैं जिन्हें आपको प्रकाशक से खरीदनी होती है। हमारी पत्रिका कोई भी इम्पेक्ट फेक्टर स्केल अभी तक जनरेट नहीं किया गया है।

(3) **सामान्य अंक / विशेषांक:** हम हमेशा सामान्य अंक ही प्रकाशित करते हैं। भविष्य में विशेषांक प्रकाशित करने की योजना आवश्य है। जब भी विशेषांक लाने की योजना होगी तो पाठकों एवं लेखकों को पत्रिका के माध्यम से सूचित किया जाएगा।

(4) **तकनीकी पक्ष:** एक बार यदि आपकी कोई रचना शिक्षा संवाद के किसी अंक में प्रकाशित होती है तो उसके तुरंत बाद वाले अंक में आपकी रचना प्रकाशित नहीं होगी। हम 'एक वर्ष - एक रचना' की नीति का अनुसरण करते हैं। ऐसा करके हम अधिक लेखकों तक तथा अधिक पाठकों तक अपनी पहुँच बना सकते हैं। कुछ अन्य तकनीकी पक्ष जिनका ध्यान रखा जन चाहिए-

- भाषा : केवल हिंदी (नोट : शिक्षा संवाद में अंग्रेजी में आलेख नहीं छापे जाते हैं)
- फॉण्ट : केवल Unicode-kokila
- फॉण्ट साइज़ : 18

- सन्दर्भ : एंड नोट ( फूट नोट अस्वीकार्य हैं।)
- फाइल : वर्ड 2007 - 2010
- पीडीऍफ़ फाइल नहीं भेजें।
- आलेख वाट्स एप पर स्वीकार नहीं कर सकेंगे।
- स्पेसिंग : Top 1 cm, Bottom 1 cm, Left 1 cm, Right 1 cm
- शोध-सार : 150 शब्द
- 'बीज शब्द/ Key Words' : न्यूनतम 5
- आलेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य हो।
- सन्दर्भ में लिखने का नियम: APA 6 केवल
- लेखक का नाम, पद, पता, ई-मेल, मोबाइल नंबर आलेख के अंत में ज़रूर लिखें।
- हमारा ई-मेल पता है : shaikshiksamwad@gmail.com
- वर्तनी की अशुद्धियों का विशेष ध्यान रखें। आलेख में वर्तनी की अशुद्दियां होने पर आलेख अस्वीकृत होने के सर्वाधिक अवसर मौजूद रहते हैं।

(5) **संलग्न / Attachments**

- आलेख की मौलिकता और अप्रकाशित होने का सत्यापन। आप लेख भेजते समय लेख के साथ ही ई-मेल में ही लिखकर भेज सकते हैं अथवा प्रयास करें की यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त किसी Plagrismsoftwere से प्राप्त रिपोर्ट संलग्न करें तो बेहतर होगा
- आपका फोटो और आलेख में शामिल फोटो, सारणियाँ, टेबल्स, ग्राफ आदि अलग से अटैच करके भेजें।
- आपका कोई एक पहचान पत्र जिसमें फोटो लगा हुआ हो।

(6) **प्राथमिकता**: सबसे पहले आलेख शामिल करते समय हम अपनी पत्रिका के सदस्यों को प्राथमिकता देते हैं। आपका आलेख स्वीकृत होने पर ही हम सदस्य बनने की अपील आपको भेजेंगे।

(7) **अंतिम निर्णय:** सामग्री चयन, सम्पादन और प्रकाशन का अंतिम निर्णय सम्पादक मंडल का रहेगा। हम आपकी रचना में सम्पादन के दौरान अपनी तरफ से कोई अंश जोड़ेंगे नहीं पर कुछ अंश ज़रूरत के अनुसार काट-छाँट करते हुए हटा सकेंगे। शोध पत्रों के मामले मे समीक्षकों की समीक्षा अनुसार ही निर्णय नैया जाएगा।

(8) **स्वैच्छिक:** आपको अपनी शिक्षा संवाद के प्रकाशित एक अंक या चयनित रचनाएँ पढ़कर एक पृष्ठ की लिखित टिप्पणी भेजनी होगी कि इस पत्रिका को लेकर आपकी राय क्या है? ताकि हम यह जान सकें कि आप पत्रिका की वैचारिकी से परिचित हैं कि नहीं।

## (9) चयन का प्रोसेज:

### Screening

शिक्षा संवाद में सबसे पहले प्राप्त रचना को सम्पादक द्वारा स्क्रीन करके चुना जाता है। इस स्तर पर रचना अस्वीकृत होते ही लेखक को तुरंत जवाबी ई-मेल भेजते हैं। हमारे यहाँ यह स्क्रीनिंग कहलाता है।

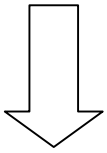

### Review Process

चयनित रचनाओं को सम्बंधित एक्सपर्ट या एक्सपर्ट के पैनल के पास भेजा जाता है जो कंटेंट पर फाइनल निर्णय लेते हैं। इसे रिव्यू कहते हैं। जानकार व्यक्ति अपनी सीमाओं को स्वीकारते हुए रचनाकार के लिए संक्षिप्त टिप्पणी के साथ आलेख को स्वीकृत या अस्वीकृत करता है। यह निर्णय अनंतिम माना जाता है।

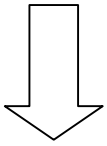

### Proof Reading

तीसरी स्टेज पर हमारे सह-सम्पादक फोर्मेट और कंटेंट संबंधी अपडेट के लिए लेखक से सम्पर्क करके रचना को छपने योग्य बनाते हैं। यहाँ रचनाकार को गुणवत्ता के लिहाज से पत्रिका का सहयोग करना होता है। यहाँ भी गुणवत्ता बनाए रखने के क्रम में आलेख को ज्यादा दिक्कतभरा होने पर अस्वीकृत किया जा सकता है।

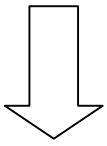

### Ready to Print

यहीं अंतिम रूप से चयनित रचना की प्रूफ रीडिंग की जाती है। अंक छपने की तारीख से दस दिन पहले सभी रचनाएँ तकनीकी टीम के पास प्रकाशन हेतु भेजी जाती है। इस पूरी प्रक्रिया के बारे में सम्बंधित लेखक को लगातार अपडेट करने का प्रयास करते हैं। अंक छपने के बाद लेखक को प्रकाशित रूप को चेक करने के लिए ईमेल से शेयर किया जाता है। सभी की संतुष्टि के बाद अनुक्रमणिका जारी की जाती है।

## प्रूफ हेतु ध्यान रखने योग्य बातें

1. सबसे उपर पहले विधा का नाम लिखें जैसे - कविता, शोध आलेख, आलेख, साक्षात्कार या कहानी आदि।
2. पहली पांच पंक्तियों में ही अगर वर्तनी की भारी अशुद्धियाँ हैं तो आलेख का अस्वीकृत होना तय हो जाएगा।
3. शुरुआती रिव्यू में भी चयन का एक ज़रूरी आधार वर्तनी की शुद्धता है।
4. रचना का शीर्षक और लेखक का केवल नाम लिखकर बोल्ड कर दें।
5. 'शोध सार' को बोल्ड करें।
6. 'बीज शब्द' को बोल्ड करें।
7. प्रत्येक पैरेग्राफ के बाद एक इंटर का गेप रखें।
8. पैरेग्राफ की शुरुआत में एक टैब लगाएं।
9. पूरे आलेख में किसी तरह की फोर्मेटिंग से बचें।
10. गणित के अंक अंतर्राष्ट्रीय मानक संख्या 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10, में ही लिखें।
11. प्रत्येक सन्दर्भ जब हू-ब-हू कहीं से लिया गया है तो "...." कौमा के अंदर लिखें। संदर्भ समाप्त होने पर संदर्भ संख्या लिखें जैसे 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10, और इसका विस्तृत संदर्भ आलेख के अंत में उसी क्रम से सूचीबद्ध करें।
12. आलेख की वर्ड फाइल में अपना खुद का फोटो इन्सर्ट न करें।
13. प्रत्येक वाक्य की समाप्ति पर पूर्ण विराम चिहन अंतिम शब्द के तुरंत बाद चिपका हुआ हो न कि एक स्पेस के बाद। इसी तरह अल्प विराम (, ) भी शब्द से चिपका हुआ हो और उसके बाद एक स्पेस ज़रूर हो।
14. ( ) के बीच लिखे शब्दों से यह कोष्ठक एकदम सटे हुए हों।
15. ( - ) योजक चिहन के दोनों तरफ के शब्द योजक चिहन से सटे हुए हों न कि एक स्पेस के बाद।
16. प्रत्येक शब्द के बीच सिंगल स्पेस हो न कि इससे ज्यादा अनावश्यक स्पेस।
17. आलेख में ज़रूरी सन्दर्भ के अलावा अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों के इस्तेमाल से बचना चाहिए।
18. 'मूल आलेख' शब्द बोल्ड करें।
19. आलेख में जितने भी उप-शीर्षक आते हैं उन्हें बोल्ड किया जा सकता है।
20. कवितांश के अलावा किसी भी रेफरेंस को बोल्ड नहीं करना हैं ।
21. आलेख के अंत में 'निष्कर्ष' ज़रूर लिखना है।
22. याद रहे शोध-सार और निष्कर्ष में किसी भी रेफरेंस का उपयोग नहीं करना वह एकदम आपकी अपनी भाषा में हों तो बेहतर रहेगा।
23. शोध आलेख न होकर साधारण आलेख होने परशोधसार बीज-शब्दनिष्कर्ष आदि तकनिकी पक्षों से छूट मिलेगी।
24. 'सन्दर्भ' बोल्ड करके लिखें और सूची बनाकर समस्त संदर्भ पुस्तक के लेखक का नाम, लेखक का उपनाम, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या क्रम से लिखें।
25. आलेख के अंत में पांच पंक्ति का पता लिखना हैं जहां क्रम से अपना नाम, पद, संस्था, शहर, ई-मेल, मोबाइल नंबर बोल्ड अक्षरों में लिखना हैं।
26. पूरेआलेख का फॉण्ट एक ही तरह का 'Unicode-Kokila' हो और साइज़ भी एक जैसी ही '18' रखनी है।
27. पूरा आलेख 'जस्टिफाइड' हो न कि लेफ्ट या राईट अलाइनमेंट के साथ।
28. सन्दर्भ लिखने में हमारी नियमावली का पालन शत प्रतिशत करना ही है।

# अनुक्रम


**लेखकों हेतु दिशानिर्देश** 3

**संपादकीय/संवाद**

- पूजा सिंह 9

**संवाद**

- संस्कृति और सौंदर्य: नामवर सिंह 11

**कहानी**

- रेल की रात: इलाचंद्र जोशी 23

**आलेख**

- भारतीय ऐतिहासिक फीचर फिल्में और इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के बीच अंतर्संबंध: मधुबाला रानी 33
- प्रारंभिक विद्यालय में विद्यार्थियों की बुनियादी साक्षरता के सापेक्ष पढ़ने की समझ का अध्ययन : पवन कुमार 51
- उत्तर प्रदेश में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की अवसंरचना, सुविधाएँ और चुनौतियों का अन्वेषणात्मक अध्ययन: किरण ऋचा 77
- शिक्षण अधिगम का ताना-बना-लोककथाएँ और शिक्षण विधियां सुरभि पाल 93

**अनुभव**

- रूस की मेरी यात्रा: केदारनाथ अग्रवाल 105

**कविता**

- मैं जीवन में कुछ कर न सका: हरिवंशराय बच्चन 145

इस पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के हैं। संपादन मंडल और पत्रिका से जुड़े सदस्यों की इन विचारों से सहमति हो यह ज़रूरीनहीं है।

# संवाद

बदलता हुआ परिवेश आज के समय में तेजी से तकनीकी विकास के साथ जुड़ा हुआ है, जिसमें तकनीक का अत्यधिक महत्व है। आज हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं, जहाँ तकनीकी प्रगति ने हमारे जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। डिजिटल होता समाज, इंटरनेट, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, रोबोटिक्स और अन्य तकनीकी नवाचारों ने समाज, अर्थव्यवस्था और कार्य करने के तरीके को पूरी तरह से बदल दिया है। पहले जहाँ जानकारी प्राप्त करने के लिए पुस्तकालयों या अन्य भौतिक स्रोतों की आवश्यकता होती थी, अब एक क्लिक पर जानकारी उपलब्ध हो जाती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय, संचार और सरकार के कामकाज में तकनीकी उपकरणों और समाधानों का इस्तेमाल आम हो गया है। विशेष रूप से महामारी के दौरान, तकनीक ने ऑनलाइन शिक्षा, वर्चुअल मीटिंग्स और दूरस्थ कार्य को संभव बनाकर लोगों को सामाजिक दूरी बनाए रखने में मदद की। इसके अलावा, तकनीक ने आर्थिक प्रगति को भी गति दी है, जिससे नई नौकरियाँ और उद्योगों का निर्माण हुआ है। हालांकि, इसके साथ-साथ तकनीकी विकास ने कुछ चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं, जैसे डेटा सुरक्षा, गोपनीयता की चिंताएँ और डिजिटल विभाजन। फिर भी, इस बदलते परिवेश में तकनीक का प्रभाव इतना गहरा और व्यापक है कि यह समाज के हर क्षेत्र में सुधार और विकास की दिशा तय कर रही है, और भविष्य में इसका प्रभाव और भी ज्यादा बढ़ने की संभावना है। बदलता हुआ परिवेश और उसमें तकनीक की भूमिका को समझना आज के समय की आवश्यकता बन गई है। तकनीकी विकास ने न केवल हमारे जीवन के तरीकों को बदल दिया है, बल्कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में गहरा असर डाला है। पहले जहाँ लोग अपने कार्यों को पूरी तरह से मैनुअली करते थे, अब हर कार्य में स्वचालन (automation) और डिजिटल उपकरणों का इस्तेमाल आम हो गया है। स्मार्टफोन, इंटरनेट और क्लाउड टेक्नोलॉजी जैसी सुविधाओं ने व्यक्ति को एक ग्लोबल नेटवर्क से जोड़ दिया है, जिससे सूचना का आदान-प्रदान और कामकाजी प्रक्रियाएँ सरल हो गई हैं। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा क्षेत्र में तकनीकी नवाचारों ने जीवन रक्षक उपकरणों और प्रक्रियाओं को उन्नत किया है, जिससे उपचार और निदान की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में भी तकनीक ने एक नई दिशा प्रदान की है, जहां ऑनलाइन शिक्षा, ई-लर्निंग प्लेटफार्म्स और डिजिटल कक्षाएँ छात्रों के लिए अधिक सुलभ और आकर्षक हो गई हैं।

आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाए, तो तकनीक ने वैश्विक व्यापार, वित्तीय सेवाओं और ई-कॉमर्स को नया आकार दिया है। अब व्यवसायों के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करना और डिजिटल मार्केटिंग के माध्यम से ग्राहक तक पहुँच बनाना आसान हो गया है। इसके बावजूद, यह परिवेश कुछ चुनौतियों का भी सामना कर रहा है, जैसे तकनीकी असमानता (digital divide), साइबर अपराध और व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा की समस्याएँ। इसके बावजूद, तकनीक का

प्रभाव सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत जीवन में अपरिहार्य हो गया है, और यह भविष्य में हमारे जीवन को और अधिक सुलभ, सक्षम और जुड़ा हुआ बनाने के लिए अनवरत रूप से विकसित होती रहेगी।

अब दो शब्द आपसे आप हमे इस पत्रिका को बेहतर बनाने के लिए, अपने विचारों को रखने और अपने अनुभवों को सांझा करने के लिए सहयोग कर सकते हैं। हम आपसे अनुरोध करते है कि आप हमे पत्रिका के इस अंक पर अपने विचारों से अवगत कराएं। इसके लिए आप हमे पत्र द्वारा, इ-मेल द्वारा या दूरभाष पर भी संपर्क कर सकते हैं। पत्रिका आपके सहयोग से चलती है इसलिए आप अपने मित्रों को, शिक्षकों को बच्चों को पत्रिका के बारे में बताएं, उनसे पत्रिका को पढ़ने को कहें और आप उन्हे पत्रिका उपहार स्वरूप भी दे सकते हैं। आप पत्रिका की सदस्यता अवश्य लें। अगले अंक की प्रतीक्षा के साथ धन्यवाद।

आपकी
पूजा सिंह

शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 11-22
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

संवाद

# संस्कृति और सौंदर्य

नामवर सिंह

'अशोक के फूल' केवल एक फूल की कहानी नहीं, भारतीय संस्कृति का एक अध्याय है; और इस अध्याय का अनंगलेख पढ़ने वाले हिंदी में पहले व्यक्ति हैं हजारीप्रसाद द्विवेदी। पहली बार उन्हें ही यह अनुभव हुआ कि 'एक-एक फूल, एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है। अशोक की भी अपनी स्मृति-परंपरा है। आम की भी है, बकुल की भी है, चंपे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है?' अब तो ख़ैर हिंदी में फूलों पर 'ललित' लेख लिखने वाले कई लेखक निकल आए हैं, लेकिन कहने की आवश्यकता नहीं कि 'अशोक के फूल' आज भी अपनी जगह है। कालिदास के प्रेमी पंडितों को पहली बार इस रहस्योद्घाटन से अवश्य ही धक्का लगा होगा कि जिस कवि को वे अब तक अपनी आर्य संस्कृति का महान गायक समझते आ रहे थे वह गंधर्व, यक्ष, किन्नर आदि आर्येतर जातियों के विश्वासों और सौंदर्य-कल्पनाओं का सबसे अधिक ऋणी है। वैसे तो भारत को 'महामानव सागर' कहने वाले रवींद्रनाथ ठाकुर एक अरसे से यह बतलाते आ रहे थे कि जिसे हम हिंदू रीति-नीति कहते हैं वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का मिश्रण है, किंतु यही संदेश 'अशोक के फूल' के माध्यम से आया तो उसकी चोट कुछ और ही थी। क्या इसलिए कि यह मनोजन्मा कंदर्प के धनुष से छूटा है? फूल की मार कितनी गहरी हो सकती है इसका एहसास कराने के लिए 'अशोक के फूल' के ये दो वाक्य क़ाफ़ी हैं: 'देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है।' और सच कहा जाए तो आर्य संस्कृति की शुद्धता के अहंकार पर चोट करने के लिए ही 'अशोक के फूल' लिखा गया है, प्रकृति-वर्णन करने के लिए नहीं। यह निबंध द्विवेदीजी के शुद्ध पुष्प-प्रेम का प्रमाण नहीं, बल्कि संस्कृति-दृष्टि का अनूठा दस्तावेज है।

अब तो भारत की 'सामासिक संस्कृति' की दिन-रात माला जपने वाले बहुतेरे हो गए हैं। दिनकरजी ने तो 'संस्कृति के चार अध्याय' नाम से एक विशाल ग्रंथ ही लिख डाला; किंतु

जैसा कि अज्ञेय ने लिखा है: 'काव्य की पड़ताल में तो दिनकर 'शुद्ध' काव्य की खोज में लगे थे, लेकिन संस्कृति की खोज में उनका आग्रह 'मिश्र संस्कृति' पर ही खोज में लगे थे, लेकिन संस्कृति की मिश्रता को ही उजागर करने का प्रयत्न है, उसकी संग्राहकता को नहीं। संस्कृति का चिंतन करने वाले किसी भी विद्वान के सामने यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि संस्कृतियाँ प्रभाव ग्रहण करती हैं, अपने अनुभव को समृद्धतर बनाती हैं, लेकिन यह प्रक्रिया मिश्रण की नहीं है। संस्कार नाम ही इस बात को स्पष्ट कर देता है। यह मानना कठिन है कि संस्कृति की यह परिभाषा दिनकर की जानी हुई नहीं थी; उनका जीवन भी कहीं उस मिश्रता को स्वीकार करता नहीं जान पड़ता था, जिसकी वकालत उन्होंने की। तब क्या यह संदेह संगत नहीं कि उनकी अवधारणा एक वकालत ही थी, दृष्टि का उन्मेष नहीं? और अगर वकालत ही थी तो उनका मुवक्किल क्या समकालीन राजनीति का एक पक्ष ही नहीं था, जिसके सांस्कृतिक कर्णधार स्वयं भी मिश्रता का सिद्धांत नहीं मानते थे, लेकिन अपनी स्थिति दृढ़तर बनाने के लिए उसे अपना रहे थे?' (स्मृतिलेखा, पृ.118)

इस 'मिश्र संस्कृति' की राजनीति से द्विवेदीजी कितने अलग थे, इसका प्रमाण यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जब से राष्ट्रीय स्तर पर अनुमोदित और प्रोत्साहित नीति के रूप में 'सामासिक संस्कृति' का बोलबाला हुआ, द्विवेदीजी ने इस विषय पर लिखना लगभग बंद कर दिया। स्पष्ट है कि वे 'मिश्र संस्कृति' के वकील न थे और न एक वकील की तरह अपने पक्ष के लिए इतिहास से तथ्य बटोरने ही गए थे। उन्होंने तो उस अनुभूति को वाणी दी जो अपने अतीत के साहित्य को पढ़ते और कलाकृतियों को देखते समय अंतर्तम में उठी थी; और इस बात से तो संभवत: अज्ञेय भी इनकार न करेंगे कि द्विवेदीजी के लिए वह एक अमूर्त बौद्धिक 'अवधारणा' नहीं थी, बल्कि 'दृष्टि का उन्मेष' था। इसीलिए जब द्विवेदीजी कहते हैं कि 'सबकुछ अविशुद्ध है', तो तुरंत बाद यह भी जोड़ते हैं कि 'शुद्ध है केवल मनुष्य की जिजीविषा।' 'वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है!'

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि अज्ञेय जहाँ संस्कृति की केवल 'संग्राहकता' की हिमायत करते हैं, वहाँ द्विवेदीजी 'त्याग' का ज़िक्र करना नहीं भूलते। 'अशोक के फूल' में ही, उसी अनुच्छेद के अंतर्गत एक द्रष्टा की तरह 'मानवजाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हज़ारों वर्ष का रूप साफ़' देखते हुए वे कहते हैं: 'मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवनधारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।'

इसलिए द्विवेदीजी के सामने योजनाबद्ध रूप से एक 'मिश्र संस्कृति' तैयार करने की समस्या नहीं है, समस्या यह है कि 'आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है' उसे किस प्रकार ध्वस्त किया जाए?

इस दृष्टि से यदि दिनकर की 'मिश्र संस्कृति' की एक राजनीति है जो अज्ञेय की संस्कार-धर्मी संग्राहक संस्कृति भी किसी और राजनीति के अनुषंग से बच नहीं जाती। जब वे कहते हैं कि संस्कृतियाँ प्रभाव ग्रहण करती हैं, अपने अनुभव को समृद्धतर बनाती है तो उसमें एक 'मूल संस्कृति' का अस्तित्व पहले ही से स्वीकार कर लिया गया है जो किसी प्रभाव से पहले 'विशुद्ध' है। आकस्मिक नहीं है कि अज्ञेय द्वारा स्थापित वत्सल निधि की 'हीरानंद शास्त्री स्मारक व्याख्यानमाला' के प्रथम आयोजन में प्रकाशित 'भारतीय परंपरा के मूल स्वर' में डॉ. गोविंदचंद्र पांडे भी लगभग ऐसे ही शब्दों में 'सामासिक संस्कृति' का विरोध करते हैं। डॉ. पांडे यह स्वीकार करते हैं कि 'विज्ञान, प्रविधि और भौतिक उपादानों के स्तर पर नाना समाजों में आदान-प्रदान अनायास और चिरपरिचित है; [और] इन साधनों का उपयोग समाज को प्रभावित करता है।' किंतु इसके साथ ही वे यह भी मानते हैं कि 'अतर्क्य भावों, अनुभूतियों और आध्यात्मिक उपलब्धियों के स्तर पर संस्कृतियों का वास्तविक मिलन अत्यंत कठिन होता है।' (पृ.18-19) कुल मिलाकर 'इस विमर्श का निष्कर्ष यह है कि भारतीय संस्कृति की तथाकथित सामासिकता वास्तव में सभ्यता के क्षेत्र में ही लागू होती है और इस क्षेत्र में वह भारत की कोई विशेषता नहीं है।' (पृ.20)

सवाल यह है कि 'सभ्यता' और 'संस्कृति' की जिन दो यूरोपीय अवधारणाओं को डॉ. पांडे ने भारत की संस्कृति के विवेचन के लिए अपनाया है, उनका संबंध 'सभ्यता' से है या संस्कृति से? आदान--प्रदान यदि सभ्यता के ही क्षेत्र में सम्भव होता है तो फिर भारतीय चिन्तन में ये पाश्चात्य अवधारणाएँ कैसे शामिल हो गयीं ? वस्तुतः अवधारणा के रूप में 'संस्कृति' को स्वीकार करने के साथ ही डॉ. पांडे ने यह स्वीकार कर लिया कि संस्कृति के क्षेत्र में भी आदान-प्रदान होता है। फिर भी जिस तरह 'राष्ट्रीय स्तर पर अनुमोदित और प्रोत्साहित सामासिक संस्कृति' का विरोध डॉ. पांडे ने किया है उसे किसी अन्य पक्ष की राजनीति की वकालत न मानना अज्ञेय के लिए भी कठिन होगा। तर्क वही है जिसका इस्तेमाल उन्होंने दिनकर के संदर्भ में किया है। यदि दिनकर की 'सामाजिक संस्कृति' का संबंध राजनीति के एक पक्ष से है तो स्वयं अज्ञेय और गोविंदचंद्र पांडे की 'शुद्ध संस्कृति' का संबंध भी राजनीति के दूसरे पक्ष से जोड़ा जा सकता है। शुद्ध होने से ही वह राजनीति से मुक्त नहीं हो जाती।

द्विवेदीजी की दृष्टि में संस्कृति का यह आग्रह भी एक प्रकार का 'मोह' है जो बाधा उपस्थित करता है। संस्कृति में निहित जिस 'संस्कार' की ओर अज्ञेय ने संकेत किया है, उसकी अर्थवत्ता से द्विवेदीजी अपरिचित हैं, यह तो स्वयं अज्ञेय भी न स्वीकार करेंगे; फिर भी उन्हें यह देखकर आश्चर्य न होना चाहिए कि उन्होंने अक्सर इस 'संस्कार' को भी बाधा माना है। लखनऊ विश्वविद्यालय के 'साहित्य का मर्म' (1948) शीर्षक व्याख्यानों में उनका ज़ोर इसी बात पर है कि विवेक के परिष्करण के लिए किए गए संस्कार भी काल पाकर किसी नए सृजन के ग्रहण के लिए बाधा बन जाते हैं। कहते हैं: 'संस्कार' शब्द का प्रयोग करते समय मुझे थोड़ा संकोच ही हो रहा है। संस्कार शब्द अच्छे अर्थ में ही प्रयुक्त होता है, परंतु मनुष्य स्वभाव से ही प्राचीन के प्रति श्रद्धापरायण होता है और प्राचीनकाल से संबंद्ध होने के कारण कुछ ऐसी धारणाओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगता है जो जब शुरू हुई होंगी तो निश्चय ही उपयोगी रही होगी परंतु बाद में उनकी उपयोगिता घिस गई और वे रुढ़ि मात्र रह गईं। ऐसे संस्कार सब समय वृहत्तर मानव पट भूमिका पर खरे नहीं उतरते।' इन कालगत संस्कारों की चर्चा करने के बाद वे उन देशगत और जातिगत संस्कारों की ओर भी संकेत करते हैं जो 'अन्य देश और अन्य जाति के विश्वासों पर आधारित साहित्य को समझने में बाधक होते हैं।' प्रसंग यद्यपि साहित्य का है फिर भी संस्कार की यह भूमिका संस्कृति के क्षेत्र में भी स्वीकार की जा सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कार के उल्लेख मात्र से संस्कृति के क्षेत्र में दृष्टिगत होने वाली संकीर्णता का परिहार नहीं हो जाता। 'संस्कार' की प्रक्रिया अंतत: संस्कृति के क्षेत्र में उस शुद्धीकरण की ओर ले जाती है जिसकी परिणति वर्जनशीलता में होती है—यह वही 'वर्जनशीलता' है जिस पर भारतीय संस्कृति के बहुत से हिमायतियों को अभिमान है। 'हमारे यहाँ' वाला ब्रम्हास्त्र इस वर्जनशील अहंकार की उपज है, जिसका मुक़ाबला द्विवेदीजी को अक्सर करना पड़ता था।

बहुत क्लेश होने पर ही 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के उपसंहार में उन्होंने लिखा: 'आए दिन श्रद्धापरायण आलोचक यूरोपियन मतवादों को धकिया देने के लिए भारतीय आचार्य-विशेष का मत उद्धृत करते हैं और आत्मगौरव के उल्लास से घोषित कर देते हैं कि 'हमारे यहाँ' यह बात इस रूप में मानी या कही गई है। मानो भारतवर्ष का मत केवल वही एक आचार्य उपस्थापित कर सकता है, मानो भारतवर्ष के हज़ारों वर्ष के सुदीर्घ इतिहास में नाम लेने योग्य एक ही कोई आचार्य हुआ है, और दूसरे या तो हैं ही नहीं, या हैं भी तो एक ही बात मान बैठे हैं। यह रास्ता ग़लत है। किसी भी मत के विषय में भारतीय मनीषा ने गड्डलिका-प्रवाह की नीति का अनुसरण नहीं किया है। प्रत्येक बात में ऐसे बहुत से मत पाए जाते हैं जो परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध पड़ते हैं।' (पृ. 129)

पंडितों की समझ का यह इकहरापन द्विवेदीजी की दृष्टि में एक बड़ी बाधा है। इस संकीर्ण इकहरेपन के ख़िलाफ़ संघर्ष करते हुए उन्होंने भारतीय संस्कृति की विविधता, जटिलता, परस्पर विरोधी जीवंतता और समृद्धि का पुन: सृजन किया। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत आर्येतर जातियों के अवदान की उल्लसित चर्चा का कारण यही है। यदि इस प्रयास में कहीं आर्य-श्रेष्ठता के अहंकार को ठेस लगती है तो द्विवेदीजी इस बात से चिंतित नहीं दिखते। वस्तुत: यह दूसरी परंपरा की खोज का प्रयास है जिसका प्रयोजन मुख्यत: पंडितों की इकहरी परंपरा की संकीर्णता का निदर्शन है।

प्रसंगवश द्विवेदीजी के इस प्रयास की एक परंपरा हिंदी में पहले से दिखाई पड़ती है। एक दशक पहले जयशंकर प्रसाद को भी ऐसे ही भारत-व्याकुल लोगों से पाला पड़ा था, जिनके जवाब में कवि को 'काव्य और कला' तथा 'रहस्यवाद' आदि निबंध लिखने पड़े थे। नए काव्य-प्रयोगों की 'प्रतिक्रिया के रूप में' उन्हें भी 'भारतीयता की दुहाई' सुनाई पड़ी थी। 'काव्य और कला' निबंध का आरंभ ही इस प्रकार होता है कि 'भारतीय वाड़्मय की' 'सुरुचि-संबंधी विचित्रताओं को बिना देखे ही अत्यंत शीघ्रता में आजकल अमुक वस्तु अभारतीय है अथवा भारतीय संस्कृति की सुरुचि के विरुद्ध है, कह देने की परिपाटी चल पड़ी है।' प्रसाद ने भी यह लक्षित किया था कि 'ये सब भावनाएँ साधारणत: हमारे विचारों की संकीर्णता से और प्रधानत: अपनी स्वरूप-विस्मृति से उत्पन्न हैं।' यह संकीर्णता और स्वरूप-विस्मृति अपनी परंपरा के ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन से ही दूर हो सकती है। किंतु प्रसाद ने अनुभव किया कि 'इसका ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन होने की संभावना जैसी पाश्चात्य साहित्य में है, वैसी भारतीय साहित्य में नहीं। उनके पास अरस्तू से लेकर वर्तमान काल तक ही सौंदर्यानुभूति-सबंधिनी विचारधारा का क्रमविकास और प्रतीकों के साथ-साथ उनका इतिहास तो है ही, सबसे अच्छा साधन उनकी अविछिन्न सांस्कृतिक एकता भी है। हमारी भाषा के साहित्य में वैसा सामंजस्य नहीं है। बीच-बीच में इतने अभाव या अंधकार-काल हैं कि उनमें कितनी ही विरुद्ध संस्कृतियाँ भारतीय रंग स्थल पर अवतीर्ण और लोप होती दिखाई देती हैं; जिन्होंने हमारी सौंदर्यानुभूति के प्रतीकों को अनेक प्रकर से विकृत करने का ही उद्योग किया है।'

अपनी परंपरा में इस अभाव और अंधकार-काल के बावजूद प्रसाद ने 'रहस्यवाद' शीर्षक निबंध में सौंदर्यानुभूति की परंपरा को पुननिर्मित करने का प्रयास किया। इस परंपरा का आरंभ भी ऋग्वेद से ही होता है, किंतु यह आर्यजन की वह परंपरा है जिसके प्रतिनिधि इंद्र हैं और जिसमें 'काम' की पूर्ण स्वीकृति है। वह वरुण के अधिनायकत्व में विकसित होने वाली असुर परंपरा से सर्वथा भिन्न है जो विधि-विधान और विवेक को विशेष महत्त्व देती थी। प्रसाद ने इन दोनों परस्पर-विरोधी परंपराओं के विकास की मनोरंजक रूपरेखा प्रस्तुत की है

और कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी दृष्टि में जीवन में 'काम' को पूर्णत: स्वीकार करके चलने वाली आनंदवादी परंपरा ही मुख्य है अथच काम्य भी।

किसी प्रकार की प्रतिक्रिया प्राप्त न होने के कारण यह कहना कठिन है कि द्विवेदीजी प्रसाद द्वारा निरूपित आनंदवादी परंपरा से किस हद तक परिचित थे, किंतु तत्त्वत: यह वही परंपरा है जिसका श्रेय वे गंधर्व, नाग, द्रविड़ आदि आर्येतर जातियों को देते हैं। 'विचार और वितर्क' (1945) में संकलित अपने एक आरंभिक निबंध 'हमारी संस्कृति और साहित्य का संबंध' में लिखा है कि 'सबसे अधिक आर्येतर-संश्रव साहित्य और ललित कलाओं के क्षेत्र में हुआ है। अजंता के चित्रित, साँची, भरहुत आदि में उत्कीर्ण चित्र और मूर्तियाँ आर्येतर सभ्यता की समृद्धि के परिचायक हैं। महाभारत और कालिदास के काव्यों की तुलना करने में जान पड़ेगा कि दोनों दो चीज़ें हैं। एक में तेज है, दृप्तता है और अभिव्यक्ति का वेग है, तो दूसरे में लालित्य है, माधुर्य है और व्यंजना की छटा है। महाभारत में आर्य उपादान अधिक है, कालिदास के काव्यों में आर्येतर। जिन लोगों ने भारतीय शिल्पशास्त्र का अनुशीलन किया है, वे जानते हैं कि भारतीय शिल्प में कितने आर्येतर उपादान हैं और काव्यों तथा नाटकों में उनका कैसा अद्भुत प्रभाव पड़ा है। पता चला है कि साँची, भरहुत आदि के चित्रकार यक्षों और नागों की पूजा करने वाली एक सौंदर्य-प्रिय जाति थी, जो संभवत: उत्तर भारत से लेकर असम तक फैली हुई थी। बहुत-सी ऐसी बातें कालिदास आदि कवियों ने इन सौंदर्य-प्रेमी जातियों से ग्रहण की, जिनका पता आर्यों को न था। कामदेव और अप्सराएँ उनकी देव-देवियाँ हैं, सुंदरियों के पदाघात से अशोक का पुष्पित होना उनके घर की चीज़ है, अलकापुरी उनका स्वर्ग है—इस प्रकार की अन्य अनेक बातें उनसे और उन्हीं की तरह अन्यान्य आर्येतर जातियों से महाकवि ने ली हैं।' इसी क्रम में आगे भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के बारे में भी, उसके आर्यों की विद्या न मानने वाले मत का ज़िक्र करते हुए कहते हैं: 'शुरू में एक कथा में बताया गया है कि ब्रम्हा ने नाट्यवेद नामक पाँचवे वेद की सृष्टि की थी। अगर आर्यों के वेदों से इसका कुछ भी संबंध होता तो पंडितों का अनुमान है, इस कथा की ज़रूरत न हुई होती। वास्तव में भारतीय नाटक पहले केवल अभिनय के रूप में ही दिखाए जाते थे। उनमें भाषा का प्रयोग करना आर्य संशोधन का परिवर्धन है।' (प्रथम संस्करण, पृ.186-87) आर्येतर अवदान की इस सूची में यदि 'भक्ती द्राविड़ ऊपजी' और आभीरों के आराध्यवदेव बालकृष्ण तथा देवी राधा को जोड़ लें तो हमारी परंपरा में सुंदर माना जाने वाला ऐसा कुछ भी नहीं बचता जो आर्येतर न हो! एक भक्तिकाव्य को छोड़कर प्रसाद और हजारीप्रसाद द्विवेदी में इस बात को लेकर कोई मतभेद नहीं है कि क्या-क्या सुंदर है? अंतर केवल यह है कि प्रसाद जिसे आर्यों के एक समुदाय की परंपरा कहते हैं, हजारीप्रसाद द्विवेदी उसे ही विभिन्न आर्येतर जातियों का अवदान मानते हैं। फिर भी एक बात में उभयत्र समानता है कि

हमारी परंपरा में जो भी सुंदर है वह आर्य नाम से प्रचारित मिथक से भिन्न है। इस मिथकीय आर्य से इतनी चिढ़ इसलिए है कि इसके ध्वजाधारियों को 'सुंदर' से परहेज है। जैसा कि प्रसाद ने 'रहस्यवाद' शीर्षक निबंध में स्पष्ट लिखा है: 'आनंद पथ को उनके कल्पित भारतीयोचित विवेक में सम्मिलित कर लेने से आदर्शवाद का ढाँचा ढीला पड़ जाता है। इसलिए वे इस बात को स्वीकार करने में डरते हैं कि जीवन में यथार्थ वस्तु आनंद है, ज्ञान से व अज्ञान से मनुष्य उसी की खोज में लगा है। आदर्शवाद ने विवेक के नाम पर आनंद और उसके पथ के लिए जो जनरव फैलाया है, वही उसे अपनी वस्तु कहकर स्वीकार करने में बाधक है।' इसलिए नैतिकतावादियों को प्रत्युत्तर देने के लिए प्रसाद ने यदि 'सुंदर' की परंपरा को अपनी ही परंपरा के अंदर आर्येतर तत्त्वों के अभिन्न मिश्रण के रूप में विवेचित किया। एक की परंपरा और दूसरे की प्रति-परंपरा दो दिशाओं से चलकर एक ही बिंदु पर मिलती है—थोथे नैतिकतावाद के विरुद्ध 'सुंदर' की प्रतिष्ठा! 'सुंदर' को ही लेकर यह सारा विवाद इसलिए है कि जैसा कि प्रसाद ने कहा है: 'संस्कृति सौंदर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।'

यह आकस्मिक नहीं है कि भारतीय संस्कृति के नाम पर नैतिकता की ध्वजा फहरानेवाले प्रकृति के सौंदर्य को तो किसी प्रकार सह लेते हैं, पर नारी-सौंदर्य के सामने आँखे चुराने लगते हैं। उदाहरण के लिए शुक्लजी के लोकमंगल में प्रकृति के सौंदर्य के लिए तो पूरी जगह है, लेकिन छायावादियों की कौन कहे स्वयं विद्यापति और सूर जैसे भक्त कवियों का नारी-सौंदर्य भी ग्राह्य नहीं है। आनंद और माधुर्य को लोकमंगल की सिद्धावस्था का गौरवपूर्ण पद देकर उन्होंने साधनावस्था का मार्ग अपनी ओर से सर्वथा निष्कटंक कर लिया, क्योंकि साधना के मार्ग में माधुर्य से बाधा पहुँचने की आशंका है।

संभवत: ऐसे ही पूर्वग्रह का प्रत्याख्यान करने के लिए द्विवेदीजी ने अपनी साहित्य-साधना के आरंभिक सोपान पर ही 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के साथ ही 'प्राचीन भारत का कला-विलास' (1940) नामक पुस्तक लिखी जो आगे चलकर परिवर्धित रूप में 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' नाम से छपी। प्राचीन भारत में प्रचलित कलाओं के लगभग सौ संदर्भों का तथ्यात्मक विवरण उपस्थित करने से पहले 'कलात्मक विनोद' में द्विवेदीजी ने आरंभ में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा कि 'विलासिता और कलात्मक विलासिता एक ही वस्तु नहीं है। थोथी विलासिता में केवल भूख रहती है—नंगी बुभुक्षा पर कलात्मक विलासिता संयम चाहती है, शालीनता चाहती है, विवेक चाहती है। सो कलात्मक विलास किसी जाति के भाग्य में सदा-सर्वदा नहीं जुटता। उसके लिए ऐश्वर्य चाहिए, समृद्धि चाहिए, त्याग और भोग का सामर्थ्य चाहिए और सबसे बढ़कर ऐसा पौरुष चाहिए जो सौंदर्य और सुकुमारता की रक्षा कर सके। परंतु इनता ही क़ाफ़ी नहीं है। उस जाति में जीवन के प्रति ऐसी

एक दृष्टि सुप्रतिष्ठित होनी चाहिए जिससे वह पशुसुलभ इंद्रिय-वृत्ति को और बाह्य पदार्थों को ही समस्त सुखों का कारण न समझने में प्रवीण हो चुकी हो, उस जाति की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपरा बड़ी और उदार होनी चाहिए और उसमें एक ऐसा कौलीन्य गर्व होना चाहिए जो आत्म-मर्यादा को समस्त दुनिया की सुख-सुविधाओं से श्रेष्ठ समझता हो, और जीवन के किसी भी क्षेत्र में असुंदर को बर्दाश्त न कर सकता हो। जो जाति सुंदर की रक्षा और सम्मान करता नहीं जानती वह विलासी भले ही हो ले, पर कलात्मक विलास उसके भाग्य में नहीं बदा होता।'

संक्षेप में यह उस सौंदर्यबोध की 'संस्कृति' है, जिसका अत्यंत संवेदनशील और सूक्ष्म विवरण 'कलात्मक विनोद' के बाद के पृष्ठों में मिलता है, या फिर 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारु चंद्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' जैसी सर्जनात्मक कृतियों के उन प्रसंगों में जहाँ नारी-सौंदर्य अपने पूरे वैभव के साथ प्रकट होता है तथा नृत्य-कला के प्रदर्शन के अवसर अक्सर उपस्थित होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवेदीजी के इस सौंदर्यबोध में सर्वथा शास्त्रीय प्रत्यभिज्ञान ही नहीं, बल्कि उसमें एक सजग ऐंद्रिय संवेदन की प्रत्यग्रता भी है। रूप, शोभा, सुषमा, सौभाग्य, चारुता, लालित्य, लावण्य आदि का ऐसा सूक्ष्म परिज्ञान और संवेदन हिंदी में दुर्लभ ही है।

इस सौंदर्यबोध को सामंती संस्कृति का पर्याय समझ लिए जाने का भ्रम न हो इसलिए 'मेघदूत-एक पुरानी कहानी', (1957) से पूर्व मेघ के 'पुष्पलावी मुखानम्' वाले 26वें छंद पर द्विवेदीजी की व्याख्या का एक अंश प्रस्तुत है: 'जो संपत्ति परिश्रम से नहीं अर्जित की जाती, और जिसके संरक्षण के लिए मनुष्य का रक्त पसीने में नहीं बदलता, वह केवल कुत्सित रुचि को प्रश्रय देती है। सात्विक सौंदर्य वहाँ है, जहाँ चोटी का पसीना एड़ी तक आता है और नित्य समस्त विकारों को धोता रहता है। पसीना बड़ा पावक तत्व है मित्र, जहाँ इसकी धारा रुद्ध हो जाती है वहाँ कलुष और विकार जमकर खड़े हो जाते हैं। विदिशा के प्रच्छन्न विलासियों में यह पावनकारी तत्व नहीं है। उनके चेहरों पर सात्विक तेज और उल्लसित करने वाली दीप्ति नहीं रह गई है। इसलिए मैं सलाह देता हूँ कि विश्राम करके आगे बढ़ना; क्योंकि प्रात:काल निचली पहाड़ी के इर्दगिर्द तुमको मनुष्य की सात्विक शोभा दिखाई देगी। वहाँ सवेरे सूर्योदय के साथ ही साथ तुम श्रम-जल-स्नात नारियों की दिव्य शोभा देख सकोगे। नागरिक लोगों के आनंद और विलास के लिए कृषकों ने फूलों के अनेक बग़ीचे लगा रखे हैं। प्रात:काल कृषक-वधुएँ फूल चुनने के लिए इन पुष्पोद्यानों में आ जाती हैं, उस प्रदेश में इन्हें 'पुष्पलावी' कहते हैं। 'पुष्पलावी' अर्थात् फूल चुननेवाली। ये पुष्पलावियाँ घर का कामकाज समाप्त करके उद्यानों में आ जाती हैं और मध्याह्न तक फूल चुनती रहती हैं। सूर्य के ताप से इनका मुखमंडल ग्लान हो उठता है, गंडस्थल से पसीने की

धारा बह चलती है और इस स्वेदधारा के निरंतर संस्पर्श से उनके कानों के आभरण रूप में विराजमान नीलकमल मलिन हो उठते हैं। दिन-भर की तपस्या के बाद वे इतना कमा लेती हैं कि किसी प्रकार उनकी जीवन-यात्रा चल सके। परंतु तुमको यहीं सात्विक सौंदर्य के दर्शन होंगे। उनके दीप्त मुखमंडल पर शालीनता का तेज देखोगे; उनकी भ्रू-भंग-विलास से अपरिचित आँखों में सच्ची लज्जा के भार का दर्शन कर पाओगे और उनके उत्फुल्ल अधरों पर स्थिर भाव से विराजमान पवित्र स्मित-रेखा को देखकर तुम समझ सकोगे कि 'शुचि-स्मिता' किसे कहते हैं। इस पवित्र सौंदर्य को देखकर तुम निचली पहाड़ी की उद्दाम और उन्मत्त विलास-लीला को भूल जाओगे। वहाँ तुम संचय का विकार देखोगे और यहाँ आत्मदान का सहज रूप।' (प्रथम संस्करण, पृ. 45-46)

पुष्पलावियों का यह श्रम-जल-स्नात सौंदर्य कालिदास का नहीं, द्विवेदीजी के 'कालिदास' का सौंदर्य है—क्लासिकी परंपरा से फूटती हुई आधुनिकता! संस्कृति को भी संस्कार देने वाली यह एक और परंपरा है जो अनजाने ही निराला की 'श्याम तन भर बँधा यौवन' वाली 'वह तोड़ती पत्थर' से जुड़ जाती है।

इसलिए जो लोग द्विवेदीजी के सौंदर्य-संस्कार को रवींद्रनाथ के शांतिनिकेतन की देन बतलाते हैं वे सिर्फ़ आधी बात कहते हैं। शांतिनिकेतन में चारों ओर संगीत और कला का जो वातावरण था उसने निश्चय ही द्विवेदीजी के सुप्त सौंदर्यबोध को जागृत किया था। स्वयं द्विवेदीजी ने भी शांतिनिकेतन के संस्मरणों में आश्रम के उस वातावरण की चर्चा की है जिसमें संगीत जीवन का अविच्छेद्य अंग बन गया था और छोटे-से-छोटे बच्चों में भी सौंदर्य-निर्माण की सहज प्रेरणा काम कर रही थी। फिर भी उनके अपने सौंदर्य प्रेम का एक बहुत बड़ा स्त्रोत अपना लोक-संस्कार था। यही वजह है कि जीवन के संदर्भ में जब भी सौंदर्य-सृष्टि की बात उठती थी तो वे उसे सामान्य जन-जीवन में उतारने की कल्पना करते थे। इस दृष्टि से 'विचार-प्रवाह' (1959) में संकलित 'जनता का अंत: स्पंदन' शीर्षक लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

निबंध इस चिंता से आरंभ होता है: 'कुछ ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि इस वंचित जनता के भीतर रसग्राहिका संवेदना उत्पन्न हो, वे भी 'सुंदर' का सम्मान करना सीखें, 'सुंदर' ढंग से जीवन बिताना सीखें, 'सुंदर' को पहचानना सीखें।' एक सत्ख्यातिवादी की तरह द्विवेदीजी कहते हैं कि जनता के अंत:करण में अगर सौंदर्य के प्रति सम्मान का भाव नहीं है, तो जनता कभी भी सौंदर्य-प्रेमी नहीं बनाई जा सकती। किंतु उनका विश्वास है कि जनता के भीतर वह वस्तु स्तब्ध पड़ी हुई है। उपयुक्त उद्दीपक के अभाव में वह स्पंदित नहीं हो रही है। इस उद्दीपक वस्तु को समाज में प्रतिष्ठित करना वांछनीय है। जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति से वे बेख़बर नहीं हैं। वे अनुभव करते हैं कि जिस जनता को पेट-भर अन्न नहीं मिलता, वह सौंदर्य का सम्मान नहीं कर सकती। नींव के बिना इमारत नहीं उठ

सकती। 'भूखे भजन न होहिं गोपाला।' किंतु इसके साथ ही यह भी सच है कि 'जो जाति 'सुंदर' का सम्मान नहीं कर सकती वह यह भी नहीं जानती कि बड़े उद्देश्य के लिए प्राण देना क्या चीज़ है। वह छोटी-छोटी बातों के लिए झगड़ती है, मरती है और लुप्त हो जाती है।'

स्पष्टत: यह दृष्टि उस विचारधारा से नितांत भिन्न है जो जनता को तात्कालिक आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष में उतारने की विश्वासी है क्योंकि वहाँ यह समझ निहित है कि जनता के बोध का स्तर इतना ही नीचा है। जो जनता के 'अंत:स्पंदन' से अपरिचित हैं वे सारी शक्ति फौरी लड़ाइयों में ही क्षय करते हैं। कोई जाति क्रांति जैसे बड़े उद्देश्य के लिए जान की बाजी लगाती है तो इसलिए कि वह सिर्फ जीना नहीं चाहती, बल्कि 'सुंदर' ढंग से जीना चाहती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज के अनेक राजनीतिक संगठन और आंदोलन सिर्फ़ इसलिए असफल हो रहे हैं कि उनके सामने जीवन का यह बड़ा उद्देश्य नहीं है और वे 'सुंदर' को एक अतिरिक्त या फ़ालतू चीज़ समझते हैं। द्विवेदीजी भी 'सौंदर्य' को 'अतिरिक्त' मानते हैं किंतु उनके 'अतिरिक्त' का अर्थ वह है जो आनंदवर्धनकृत 'लावण्य' की परिभाषा में है। वह किसी वस्तु के प्रसिद्ध अवयवों में से कोई भी नहीं है, उनसे अतिरिक्त है और फिर भी उन अवयवों को छोड़कर नहीं रह सकता। सो सौंदर्य रूप नहीं है, लेकिन रूप को छोड़कर रह भी नहीं सकता। इस शास्त्रीय परिभाषा से द्विवेदीजी जीवन के लिए जो निष्कर्ष निकालते हैं, वह द्रष्टव्य है। कहते हैं: 'जीवन को सुंदर ढंग से बिताने के लिए भी जीवन का एक रूप होना चाहिए। बहुत से लोग कुछ भी न करने को भलापन समझते हैं। यह ग़लत धारणा है। सुंदर जीवन क्रियाशील होता है; क्योंकि क्रियाशीलता ही जीवन का रूप है। क्रियाशीलता को छोड़कर जीवन का 'सौंदर्य' टिक नही सकता।' द्विवेदीजी के अनुसार इस भाव से चालित जन-समाज अंतत: 'राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों पर कब्ज़ा करने के प्रयास' से कम पर संतुष्ट नहीं हो सकता क्योंकि 'समाज व्यवस्था को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना एकदम असंभव हो गया है।' किंतु उन संकीर्णतावादी क्रांतिकारियों से द्विवेदीजी सहमत नहीं हैं जो मनुष्य के भविष्य को सुखी बनाने के नाम पर आज उसके सौंदर्य-प्रेम को किसी न किसी बहाने कुचल देना चाहते हैं। अंतिम दिनों में लिखित 'परंपरा और आधुनिकता' शीर्षक लेख में वे कहते हैं: "जो मनुष्य को उसकी सहज वासनाओं और अद्भुत कल्पनाओं के राज्य से वंचित करके भविष्य में उसे सुखी बनाने के सपने देखता है वह ठूँठ तर्कपरायण कठमुल्ला हो सकता है, आधुनिक बिल्कुल नहीं। वह मनुष्य को समूचे परिवेश से विच्छिन्न करके हाड़-मांस का यंत्र बनाना चाहता है। यह न तो संभव है, न वांछनीय।" (ग्रंथावली 9/363) इसलिए द्विवेदीजी मनुष्य की 'समस्त रचयित्री आनंदिनी वृत्ति' का विकास आवश्यक समझते हैं, क्योंकि चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, धर्मविधान और साहित्य के माध्यम से उसी वृत्ति को अभिव्यक्ति

मिलती है। यह आकस्मिक नहीं है कि अंतिम दिनों में वे 'सौंदर्यशास्त्र' पर 'लालित्य-मीमांसा' नाम से एक पूरी पुस्तक लिख रहे थे। अपने प्रिय कवि कालिदास पर 'कालिदास की लालित्य-योजना' नामक पुस्तक पूरी करके वे स्वयं लालित्यशास्त्र पर ही व्यवस्थित और सांगोपांग विचार करना चाहते थे। उनके जीवन की सुदीर्घ सौंदर्य-चिंता और सौंदर्य-साधना की यह स्वाभाविक परिणति थी। दुर्भाग्य से उस पुस्तक के केवल पाँच ही निबंध पूरे हो पाए, पर उनसे भी उनकी व्यापक और मौलिक सौंदर्य-चिंता का कुछ आभास मिल ही जाता है। उन्हें इस तथ्य का एहसास है कि 'भारतवर्ष में इस प्रकार के किसी अलग शास्त्र की कल्पना नहीं की गई है; परंतु काव्य, शिल्प, चित्र, मूर्ति, संगीत, नाटक आदि की आलोचना के प्रसंग में और विविध आगमों में 'चरम सुंदर तत्त्व' की महिमा बताने के बहाने इसकी चर्चा अवश्य होती रही है।' इसलिए अपनी इस छिन्न किंतु समृद्ध परंपरा के आधार पर ही उन्होंने लालित्य-चिंतन के भवन-निर्माण का प्रयास किया है। इस प्रयास का पहला सूत्र है कि वे सौंदर्य को सौंदर्य न कहकर 'लालित्य' कहना चाहते हैं, क्योंकि 'प्राकृतिक सौंदर्य से भिन्न किंतु उसके समानांतर चलने वाला मानवरचित सौंदर्य' (ग्रंथावली 7/34) उनकी दृष्टि में विशेष महत्त्वपूर्ण है। लालित्य वह इसलिए है कि मानव द्वारा लालित है। सौंदर्य की इस मानववादी धारणा का स्त्रोत द्विवेदीजी ने अपनी परंपरा से ही ढूँढ़ निकाला। वह स्त्रोत है भरतमुनि का नाट्शास्त्र। नाट्यशास्त्र में नाटक की उत्पत्ति की जो कथा दी गई है उसके अनुसार देवता नाटक न कर सके और नाटक कर सकने में मनुष्य को ही समर्थ समझा गया, क्योंकि उसमें देवताओं से एक विशिष्ट शक्ति है—अनुकरण की। यही नहीं, भरतमुनि ने अपने समय में प्रचलित रूपकों में से पूर्णांक सिर्फ़ नाटक और प्रकरण को ही माना जहाँ नायक मनुष्य होता है। नायक पर विचार करते हुए प्रसंगवश नाट्यशास्त्र के अनुसार मनुष्य ही धीरोदात्त हो सकते हैं, जबकि 'देवा धीरोद्धता एवं' क्योंकि देवों में फलागम के लिए उतावली होती है और धीरोदात्त की भाँति धीरभाव से प्रत्याशा में वे नहीं उलझते। इस प्रकार द्विवेदीजी 'कला-सृजन में मनुष्य की महिमा का सबल विवेक' भरतमुनि से प्राप्त करते हैं। सौंदर्य को मनुष्य-लालित मानने का दूसरा स्त्रोत है तांडव और लास्य का अंतर। पुराणगाथा के अनुसार शिव का तांडव रस-भाव-विवर्जित 'नृत्त' हैं जबकि पार्वती का लास्य रस-भाव-समन्वित नृत्य है। द्विवेदीजी इससे यह संकेत ग्रहण करते हैं कि 'तांडव जहाँ मानव पूर्व तत्त्वों का स्वत:स्फूर्त विकास है, वहाँ लास्य मानवीय प्रयासों का ललित रूप। (वही, 7/31) अंत में आगमों में वर्णित विश्वव्यापिनी सर्जनात्मक शक्ति 'ललिता' के प्रभामंडल से मंडित करते हुए वे मनुष्य-निर्मित सौंदर्य तत्त्व को 'लालित्य' की संज्ञा देते है। किंतु कुल मिलाकर समष्टिगत और व्यष्टिगत दोनों ही स्तरों पर द्विवेदीजी की सौंदर्य दृष्टि मूलत: मानव-केंद्रित ही है। इसका अर्थ सिर्फ़ यही नहीं है कि सौंदर्य का स्त्रष्टा मनुष्य है, बल्कि यह भी कि सौंदर्य की सृष्टि करने के कारण ही मनुष्य मनुष्य है। द्विवेदीजी की लालित्य-मीमांसा का दूसरा सूत्र

यह है कि यह 'बंधन के विरुद्ध विद्रोह' है और 'बंधनद्रोही व्याकुलता को रूप देने का प्रयास' है। (7/38) नृत्य के संदर्भ में इसी बात को 'जड़ के गुरुत्वाकर्षण पर चैतन्य की विजयेच्छा' कहा गया है। (7/28) आकस्मिक नहीं है कि द्विवेदीजी ने अपने सभी उपन्यासों में किसी-न-किसी बहाने नृत्य का आयोजन किया है। नृत्य भले ही बंधनों के विरुद्ध विद्रोह को व्यक्त करने वाली सबसे जीवंत कला हो, किंतु अन्य कलाएँ भी नृत्य के इस धर्म का अनुसरण करती हैं, यह भी द्विवेदीजी ने यथास्थान स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार द्विवेदीजी की दृष्टि में कला और सौंदर्य की सृष्टि विलास-मात्र नहीं बल्कि बंधनों के विरुद्ध विद्रोह है जो, शास्त्र समर्थित न होते हुए भी, उनकी क्रांतिकारी सौंदर्य-दृष्टि का परिचायक है। द्विवेदीजी की लालित्य-मीमांसा का तीसरा सूत्र यह है कि सौंदर्य एक सर्जना है—मनुष्य की सिसृक्षा का परिणाम। उल्लेखनीय है कि 'लालित्य-मीमांसा' के प्राप्त अंशों में सबसे अधिक विचार सिसृक्षा पर ही है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि वे मनुष्य की सृजनशीलता पर सबसे अधिक बल देना चाहते थे। विवेचन की शब्दावली अवश्य पुरानी है और प्राय: शैव तथा शाक्त दर्शनों की इच्छा शक्ति और क्रियाशक्ति का सहारा लिया गया है, किंतु अंतत: इस आध्यात्मिक शब्दावली के बीच से मनुष्य की वह सर्जनात्मक शक्ति ही प्रकाशित होती है जो सौंदर्य, कला और संस्कृति के मूल में है। इसी सृजनशीलता के संदर्भ में उन्होंने उन 'रूढ़ियों' की भूमिका पर भी विचार किया है जो कलाकार के लिए सब समय बाधक ही नहीं होतीं, बल्कि कभी-कभी साधक या सहायक भी हो जाती है। अंत में द्विवेदीजी एक ऐसे 'समग्र भाव' के रूप सौंदर्य की स्थापना करते हैं जो धर्माचरण, नैतिकता आदि (जीवन की) सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों को छापकर, सबको अभिभूत करके, सबको अंतर्ग्रथित करके 'सामग्र्य भाव' का प्रकाश करता है। उन्हीं के शब्दों में: 'भाषा में, मिथक में, धर्म में, काव्य में, मूर्ति में, चित्र में बहुधा अभिव्यक्ति मानवीय इच्छाशक्ति का अनुपम विलास ही वह सौंदर्य है जिसकी मीमांसा का संकल्प लेकर हम चले हैं।' (7/34) मीमांसा दुर्भाग्यवश अपूर्ण ही रह गई; पर संकल्प सार्थक है। 'जनता का अंत: स्पंदन' ही नहीं बल्कि अन्य रचनाओं के प्रकाश में 'लालित्य-मीमांसा' के सूत्रों को देखें तो संकेत स्पष्ट है: जीवन का समग्र विकास ही सौंदर्य है। यह सौंदर्य वस्तुत: एक सृजन व्यापार है। इस सृजन की क्षमता मनुष्य में अंतर्निहित है। वह इस सौंदर्य सृजन की क्षमता के कारण ही मनुष्य है। इस सृजन व्यापार का अर्थ है बंधनों से विद्रोह। इस प्रकार सौंदर्य विद्रोह है—मानव-मुक्ति का प्रयास है।

*****

स्रोत : पुस्तक : दूसरी परंपरा की खोज रचनाकार : नामवर सिंह प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड।

शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 23-31
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

कहानी

# रेल की रात

**इलाचंद्र जोशी**

गाड़ी आने के समय से बहुत पहले ही महेंद्र स्टेशन पर जा पहुँचा था। गाड़ी के पहुँचने का ठीक समय मालूम न हो, यह बात नहीं कही जा सकती। जिस छोटे शहर में वह आया हुआ था, वहाँ से जल्दी भागने के लिए वह ऐसा उत्सुक हो उठा था कि जान-बूझ कर भी अज्ञात मन से शायद किसी अबोध बालक की तरह वह समझा था कि उसके जल्दी स्टेशन पर पहुँचने से संभवत: गाड़ी भी नियत समय से पहले ही आ जाएगी।
होल्डाल में बँधे हुए बिस्तरे और चमड़े के एक पुराने सूटकेस को प्लेटफ़ार्म के एक कोने पर रखवा कर वह चिंतित तथा अस्थिर-सा अन्यमनस्क भाव से टहलते हुए टिकट-घर की खिड़की के खुलने का इंतिज़ार करने लगा।

महेंद्र की आयु बत्तीस-तैंतीस वर्ष के लगभग होगी। उसके क़द की ऊँचाई साढ़े पाँच फ़ीट से कम नहीं मालूम होती थी। उसके शरीर का गठन देखने से उसे दुबला तो नहीं कहा जा सकता, तथापि मोटा वह नाम का भी न था। रंग उसका गेहुँआ था, कपोल कुछ चौड़ा, भौंहें कुछ मोटी किंतु तनी हुई, आँखें छोटी पर लंबी, काली मूँछें घनी पर पतली और दोनों सिरों पर कुछ ऊपर को उठी थीं। वह खद्दर का एक लंबा कुरता और खद्दर की धोती पहने था। सर पर टोपी नहीं थी। पाँवों में घड़ियाल के चमड़े के बने हुए चप्पल थे। उसके व्यक्तित्व में आकर्षण अवश्य था, पर वह आकर्षण सब समय सब व्यक्तियों की दृष्टि को अपनी ओर नहीं खींचता था।
सूरज बहुत पहले डूब चुका था और शुक्ल पक्ष का अपूर्ण गोलाकार चंद्रमा अपने किरण-जाल से दिग्-दिगंत को स्निग्ध आलोक-छटा से विभासित करने लगा था। स्टेशन पर

अधिक भीड़ न थी। प्लेटफ़ार्म पर टहलते-टहलते पूर्व की ओर क़दम निकल जाने पर ऐसा मालूम होने लगता था कि चाँदनी दीर्घ-विस्तृत समतल भूमि पर अलस क्लांति की तरह पड़ी हुई है। झिल्ली-झनकार का एकांतिक मर्मर स्वर इस अलसता की वेदना को निर्मम भाव से जगा रहा था, जिससे महेंद्र के हृदय की सुप्त व्याकुलता तिलमिला उठती थी।

सिगनल डाउन हो गया था। टिकट-घर खुल गया था। थर्ड क्लास का टिकट ख़रीद कर महेंद्र गाड़ी का इंतिज़ार करने लगा। थोड़ी देर में दूर ही से सर्चलाइट के प्रखर प्रकाश से तिमिर-विदारण करती हुई गाड़ी दिखाई दी और झक-झक करती हुई स्टेशन पर आ खड़ी हुई।
सामने के कंपार्टमेंट में केवल दो व्यक्ति बैठे थे और वे भी उतरने की तैयारी कर रहे थे। महेंद्र एक हाथ में बिस्तर की गठरी और दूसरे हाथ से सूटकेस पकड़ कर उसी में जा घुसा। जो दो व्यक्ति कंपार्टमेंट में थे, उनके उतरते ही एक चश्माधारी सज्जन ने दो महिलाओं के साथ भीतर प्रवेश किया। कुली ने आ कर नवागंतुक महाशय का सामान भीतर रख दिया और मज़ूरी के संबंध में काफ़ी हुज्जत करने के बाद पैसे ले कर चला गया। चश्माधारी सज्जन महिलाओं के साथ महेंद्र के सामने वाले बेंच पर बड़े आराम से बैठ गए। मालूम होता था कि वह बड़ी हड़बड़ी के साथ गाड़ी के आने के कुछ ही समय पहले स्टेशन पहुँचे थे और घबराहट में थे, कि महिलाओं को साथ ले कर यदि किसी कंपार्टमेंट में जगह न मिली, तो क्या हाल होगा। वह अभी तक हाँफ रहे थे, जिससे उनकी अब तक की परेशानी स्पष्ट व्यक्त होती थी। अब जब आराम से बैठने को ख़ाली जगह मिल गई, तो एक लंबी साँस ले कर चश्मा उतार कर रूमाल से मुँह का पसीना पोंछने लगे। पसीना पोंछते-पोंछते महेंद्र की ओर देख कर उन्होंने प्रश्न किया, 'शिकोहाबाद कै बजे गाड़ी पहुँचेगी, आप बता सकते हैं?'

महेंद्र ने उत्तर दिया, 'जहाँ तक मेरा ख़याल है, बारह बजे के क़रीब पहुँचेगी।'
महेंद्र कनखियों से महिलाओं की ओर देख रहा था। महिलाएँ उसके एकदम सामने बैठी थीं और यदि दृष्टि सीधी करके स्वाभाविक रूप से उन्हें देखता रहता, तो भी शायद न तो चश्माधारी सज्जन को और न महिलाओं को कोई आपत्ति होती, पर उसे अपनी स्वाभाविक संकोचशीलता के कारण उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने का साहस नहीं होता था। दोनों महिलाएँ बेपर्दा बैठी थीं। उनमें एक की अवस्था प्राय: पैंतीस वर्ष की होगी, वह एक सफ़ेद चादर ओढ़े खड़ी थी, दूसरी बाईस-तेईस वर्ष की जान पड़ती थी, वह एक गुलाबी रंग की सुंदर, सुरुचिपूर्ण साड़ी पहने थी। दोनों यथेष्ट सभ्य और सुशील जान पड़ती थीं। ज्येष्ठा के

देखने से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता था कि किसी समय वह सुंदर रही होगी, पर अब अस्वस्थता के कारण उसका मुखमंडल बिलकुल निस्तेज जान पड़ता था। कनिष्ठा यद्यपि सौंदर्य-कला की दृष्टि से सुंदरी नहीं थी, तथापि उसके मुख की व्यंजना में एक ऐसी सरल मधुरिमा वर्तमान थी, जो बरबस आँखों को आकर्षित कर लेती थी।

आज कई कारणों से महेंद्र का जी दिन भर अच्छा नहीं रहा। गाड़ी में बैठने तक वह चिंतित, अन्यमनस्क तथा उदास था। पर गाड़ी में बैठते ही शिष्ट, सुशील तथा सुंदरी महिलाओं के साहचर्य से उसके खिन्न मन में एक सुखद सरलता छा गई। यद्यपि वह संकोच के कारण कुछ कम घबराया हुआ न था, तथापि चश्माधारी सज्जन की भोली आकृति तथा सरल भाव-भंगिमाओं से और महिलाओं की शालीनता से उसे इस बात पर धीरे-धीरे विश्वास होने लगा था कि उनके बीच किसी प्रकार का संकोच अनावश्यक ही नहीं बल्कि अशोभन भी है।
चश्माधारी सज्जन ने चश्मा उतार कर एक रूमाल से उसे पोंछते हुए पूछा, 'आप क्या शिकोहाबाद जा रहे हैं?'

'जी नहीं, मैं दिल्ली जा रहा हूँ। क्या आप शिकोहाबाद में ही रहते हैं?'
'जी नहीं, मुझे टुँडला जाना है। मैं वहाँ कोर्ट में प्रैक्टिस करता हूँ। इधर कुछ दिनों के लिए घर आया हुआ था। अब अपनी 'वाइफ़' को और 'सिस्टर' को ले कर वापस जा रहा हूँ। 'सिस्टर' की तबीअत ठीक नहीं रहती, इसलिए उसे हवा-बदली के लिए ले जा रहा हूँ।'

एक साधारण-से प्रश्न के उत्तर में इतनी बातों से परिचित होने पर महेंद्र को नवपरिचित सज्जन की बे-तकल्लुफ़ी पर आश्चर्य हुआ और वह मन ही मन मुस्कराने लगा। उसने अनुमान लगाया कि ज्येष्ठा महिला 'सिस्टर' होगी और कनिष्ठा 'वाइफ़'।
थोड़ी देर में गाड़ी चलने लगी। कोई दूसरा यात्री उस डिब्बे में न आया।

चश्माधारी महाशय गाड़ी चलने के कुछ देर बाद ऊँघने लगे। वे रह न सके और बँधे हुए बिस्तर को तकिया बना कर एक दूसरे बेंच पर लेट गए और लेटते ही ख़र्राटे लेने लगे। न जाने क्यों, महेंद्र के मन में यह विश्वास जम गया कि इन नवपरिचित महाशय का जीवन बड़ा सुखी है। उनकी बे-तकल्लुफ़ी तथा उनके मुख का आत्म-संतोषपूर्ण भाव देख कर उनके मन

में यह विश्वास जमने लगा था और जब उसने उन्हें निश्चिंत सोते हुए तथा ख़र्राटे भरते देखा, तो उसकी यह धारणा दृढ़ हो गई।

ज्येष्ठा महिला ने भी थोड़ी देर में ऊँघना शुरू कर दिया। वह ऊँघती जाती थी और बीच-बीच में जब ज़बर्दस्त हिचकोला खाती थी तो जाग पड़ती थी। केवल कनिष्ठा महिला पूर्णत: सजग थी। वह कभी खिड़की के बाहर झाँक कर चाँदनी के उज्ज्वल आलोक में शायद 'पल-पल परिवर्तित' प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेती थी, कभी ऊँघने वाली महिला की ओर देखती थी, कभी ख़र्राटे भरने वाले महाशय, शायद अपने पति को एक बार सरसरी निगाह से देख लेती थी और कभी महेंद्र को स्निग्ध किंतु विस्मय की उत्सुकता से पूर्ण आँखों से देखने लगती थी। उन आँखों की स्थिर दृष्टि जब महेंद्र पर आ कर पड़ती थी तो, उसे ऐसा मालूम होने लगता कि मोहाविष्ट हुआ जा रहा है और उसकी सारी आत्मा, यहाँ तक कि सारा शरीर भी अपना रूप बदल रहा है और यह किसी अव्यक्त तथा अतींद्रिय मायावी स्पर्श से कुछ का कुछ हुआ जा रहा है। वह उस स्थिर दृष्टि का तेज़ सहन न कर सकने के कारण आँखें फिरा लेता था।

गाड़ी टटर-टट्ट-टटर-टट्ट शब्द से चली जा रही थी। जाग्रत महिला की गुलाबी साड़ी का आँचल हवा के झोंके से नीचे खिसक कर उसके लहराते हुए घनकुंचित काले केशों की बहार दिखा रहा था। गुलाबी साड़ी भी हवा के ज़ोर से फ़र-फ़र फ़हरा रही थी। महेंद्र पूर्ण जाग्रत अवस्था में स्वप्न देखने लगा। उसे यह भी भ्रम होने लगा कि यह महिला, जो इसके पहले उसके लिए एकदम अज्ञात थी और निश्चय ही सदा अज्ञात रहेगी, न जाने किस चिदानंदमय लोक से अकस्मात आविर्भूत हो कर उसके पास आ बैठी है और गुलाबी रंग की पताका फ़हरा कर विश्व-विजय को निकली है और वह उसका सारथी बन कर उस अनंतगामी रेल रूपी रथ पर चला जा रहा है। सारा विश्व, समस्त मानवी तथा मानसी सृष्टि उसके लिए उस कंपार्टमेंट के भीतर समा गई थी, जिसमें ऊँघनेवाली महिला तथा सोए हुए सज्जन का कोई अस्तित्व नहीं था, और उसके बाहर क्षण-क्षण में परिवर्तित होने वाले अस्थिर माया जगत का चिर चंचल रूप एकदम असत्य सत्ताहीन-सा लगता था।

महेंद्र सोचने लगा कि उसने जीवन में कितनी ही स्त्रियों को विभिन्न रूपों तथा विचित्र परिस्थितियों में देखा है, पर आज का यह बिलकुल साधारण-सा अनुभव उसे क्यों ऐसा अपूर्व तथा अनुपम लग रहा है। वह सोच ही रहा था कि फिर उस विश्व-विजयिनी ने अपनी सुंदर विस्मित आँखों की रहस्यमयी उत्सुकता से भरी स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह

मन ही मन संबोधित करते हुए कहने लगा, चिर अज्ञाता, चिर अपरिचिता देवी! तुम मुझसे क्या चाहती हो। तुम्हारी इस मर्मभेदिनी दृष्टि का क्या अर्थ है? दैवयोग से महाकाल के इस नगण्यतम क्षण में, जिसकी सत्ता महासागर में एक क्षुद्रतम बुदबुदे के बराबर भी नहीं है, हम दोनों का आकस्मिक मिलन घटित हुआ है, और महासागर में बुदबुदे की तरह यह क्षण सदा के लिए विलीन हो जाएगा। तथापि इतने ही अर्से में क्या तुम हम दोनों के जन्मांतर के संबंध से परिचित हो गई अथवा यह सब कुछ नहीं है? तुम्हारी आँखों की उत्सुकता का कोई मूल्य नहीं है, मेरी विह्वल भावुकता का कोई महत्व नहीं है! महत्वपूर्ण जो कुछ है, वह है तुम्हारे पास लेटे हुए व्यक्ति का ख़र्राटे भरना।

शिकोहाबाद पहुँचने पर चश्माधारी सज्जन की नींद न टूटी और ज्येष्ठा महिला ऊँघती रही। पर महेंद्र की विश्व-विजयिनी की आँखों में एक क्षण के लिए भी निद्रा-रसावेश का लेश नहीं दिखाई दिया। वह बीच-बीच में अपनी मर्म-भेदिनी दृष्टि की प्रखर उत्सुकता से उसके हृदय को अकारण निर्मम रूप से बिद्ध करती चली जाती थी। फलस्वरूप महेंद्र की गुलाबी मोहकता भी शिकोहाबाद पहुँचने तक अखंड बनी रही।
शिकोहाबाद पहुँचने पर विश्व-विजयिनी ने चश्माधारी सज्जन के किंचित स्थूल शरीर को हाथ से हिलाते हुए जगाया। ऊँघती हुई महिला भी सँभल कर बैठ गई। कुलियों से सामान उतरवा कर चारों व्यक्ति उतर पड़े। दिल्ली वाली गाड़ी जिस प्लेटफ़ार्म पर लगने वाली थी, वहाँ को जाने के लिए पुल पार करना पड़ा। पुल पार करके वे लोग जिस प्लेटफ़ार्म पर आए, वहाँ कहीं एक भी बत्ती जली हुई नहीं थी। पर चूँकि सर्वत्र निर्मल चाँदनी छिटक रही थी, इसलिए बत्ती की कोई आवश्यकता न जान पड़ी। गाड़ी के आने में अभी डेढ़ घंटे की देर थी। चश्माधारी महाशय एक बेंच पर बिस्तर फैला कर लेट गए। दोनों महिलाएँ भी नीचे रखे हुए सामान के ऊपर बैठ गईं।

चश्माधारी सज्जन ने महेंद्र से कहा, 'आप भी किसी बेंच पर बिस्तर बिछा कर लेट जाइए।'
पर कोई बेंच ख़ाली नहीं थी और न महेंद्र सोने के लिए ही उत्सुक था। आज की रेलवे यात्रा की चंद्रोज्ज्वल रात्रि उसे चिरजाग्रत तथा चिरजीवित स्वप्न-लोक में विचरण का अवसर दे रही थी। वह प्लेटफ़ार्म पर टहलते हुए अपने अंतर्मन में नवोद्घाटित जीवन-वैचित्र्य की चहल-पहल देख कर विस्मित हो रहा था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह जीवन की मधुरिमा से आज प्रथम बार परिचित हो रहा था। रेलवे लाइन के उस पार दिगंत विस्तृत ज्योत्स्ना-

राशि अपने आवेश में स्वयं पुलकित हो रही थी और सामने काफ़ी दूर पर दो रक्तरंजित गोलाकार प्रकाश-चिह्न आकाश-दीप की तरह मानो आनंदोज्ज्वल रंगीन जीवन का मार्ग उसके लिए इंगित कर रहे थे। रेलगाड़ी में हो कर वह अनेक बार आया था और गया था और कितनी ही बार उसे रात के समय स्टेशनों पर गाड़ी के इंतिज़ार में ठहरना पड़ा था, पर आज की ऐंद्रजालिक उल्लासपूर्ण अनुभूति उसके लिए एकदम नई थी। इस बार इंद्रजाल के उद्घाटन का श्रेय जिसको था, वह मायाविनी इस समय टीन की छत के नीचे की छाया में बैठी हुई थी और अंधकार में उसकी आँखों के जादू का चलना बंद हो गया था। पर वहाँ पर मात्र उसका अस्तित्व ही महेंद्र की आत्मा में मायालोक की मोहकता का सृजन करने के लिए पर्याप्त था।

वह टहलते-टहलते न मालूम किन निरुद्देश्य स्वप्नों की माया के फेर में पड़ा हुआ था कि अचानक चश्माधारी महाशय ने बेंच पर से पुकारते हुए कहा, 'अरे जनाब, कब तक टहलिएगा। अगर लेटना नहीं चाहते, तो यहाँ पर बैठ तो जाइए। नींद तो अब आवेगी नहीं। इसलिए गाड़ी के आने तक गप-शप ही रहे।' महाशयजी पहले ही काफ़ी सो चुके थे इसलिए अब नींद नहीं आ रही थी। महेंद्र मुस्कराता हुआ उनके पास अपने सूटकेस के ऊपर बैठ गया।
महाशयजी ने कहा, 'आप दिल्ली में कहीं मुलाज़िम हैं?'

'जी नहीं।'
'तब आप क्या करते हैं, आप खद्दर पहने हैं, क्या आप राजनीतिज्ञ हैं?'

'पहले था, अब नहीं के बराबर हूँ।'
'वह कैसे?'

इस प्रश्न के उत्तर में महेंद्र ने परम क्लांति का भाव दिखाते हुए कहा, 'अरे साहब, सुन के क्या कीजिएगा। व्यर्थ में आपके संस्कारों को आघात पहुँचेगा। इस चर्चा को हटाइए और किसी अच्छे विषय की चर्चा चलाइए।'
स्वभावत: चश्माधारी का कौतूहल बढ़ा। उन्होंने आग्रह के साथ कहा, 'फिर भी ज़रा सुनें तो सही। आख़िर कौन-सी ऐसी बात हो गई।'

महेंद्र की सुप्त स्मृतियाँ तिलमिला उठीं थीं। कनखियों से उसने देखा, प्राय: अंधकार में बैठी हुई मायाविनी महिला का ध्यान उसी की ओर था। पल में उसके मानसिक चक्षुओं के आगे उसके सारे विगत जीवन के व्यर्थता के दु:खद संस्मरणों की झाँकी चित्रपट पर क्रम से परिवर्तित होने वाले चित्रों की तरह भासमान होने लगी। भाव के आवेश में आ कर उसने कहा, 'अच्छा तो सुनिए। ग्यारह वर्ष से ले कर तीस वर्ष तक की अवस्था तक गाँधी के सिद्धांतों के पीछे पागल हो कर, भूखों रह कर, पग-पग ठोकरें खा कर, समाज तथा परिवार की फटकारें सह कर, जीवन के सब सुखों को अपने ध्येय के लिए तिलांजलि दे कर, राष्ट्रीय आदर्श को ब्रह्मतत्व से भी अधिक महत्व दे कर सच्ची लगन से अपनी सारी आत्मा को निमज्जित करके देश का काम किया। तीन बार काफ़ी अवधि के लिए जेल में सड़ता रहा, बार-बार पुलिस के डंडे सर पर पड़ते रहे। ज़मीन-जायदाद कुर्क हो गई, माता-पिता अपनी कपूत संतान के कारण तबाह हो कर मानसिक और शारीरिक पीड़ा की पराकाष्ठा भोग कर चल बसे, पत्नी तड़प-तड़प कर अपने भाग्य को कोसती हुई मर गई। फिर भी मैं राष्ट्र से कल्याण के परम ध्येय को स्त्री, परिवार, आत्मा और परमात्मा से बहुत ऊँचा मानता हुआ सच्ची लगन से काम करता रहा। जब अंतिम बार जेलख़ाने में बंदी मियाद पूरी करने के बाद थका-माँदा मन तथा शरीर से क्लिष्ट और क्लांत हो कर मैं बाहर आया, तब एक-एक करके उन स्नेही जनों की स्मृतियाँ मेरे मन में उदित हो-हो कर व्यक्त होने लगीं, जिनकी मैं सदा अवज्ञा करता आया था। अपनी पत्नी से मैंने जीवन में शायद दो दिन भी घनिष्ठता से बातें न की होंगी। जब मैं बाहर रहता था, तो उसके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते थे और मैं सरसरी दृष्टि से पढ़ कर अवज्ञा से फाड़ कर फेंक देता था। एक या दो बार से अधिक मैंने उसके पत्रों का उत्तर नहीं दिया और दो बार जो उत्तर दिया था, वह भी चार पंक्तियों में बिल्कुल रूखे-सूखे ढंग से। अब जब मैं अपने को सारे संसार में अकेला, स्नेह तथा संवेदना से वंचित, असहाय तथा निरुपाय अनुभव करने लगा तो उसकी भोली-भाली, सकरुण, स्नेह की वेदना से भरी सहज सलोनी मूर्ति प्रतिपल मेरी आँखों के आगे भासित होने लगी। उसके पत्रों में सरल शब्दों में वर्णित कातर व्याकुलता के हाहाकार की पुकार मानो मेरी स्मृति के अतुल गह्वर में दीर्घ सुप्ति की घोर जड़ता के बाद अकस्मात जागरित हो कर मेरे हृदय पर जलते हुए अंगारों के गोलों से आघात करने लगी। अपने जीवन में कभी किसी बात पर नहीं रोया था। माता-पिता तथा पत्नी, किसी की मृत्यु पर आँसू की एक बूँद मेरी आँखों से न निकली थी। अब रह-रह कर उन लोगों की याद में बिलख-बिलख कर मैं बार-बार रो पड़ता। मेरी

स्नेहशील पतिपरायण पत्नी की करुण पुण्यछवि उज्ज्वल नक्षत्र की तरह मेरी आँखों के आगे स्पष्ट भासमान होने लगी। रह-रह कर मेरा जी विकल हो उठता था और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता, जैसे मेरे हृदय में किसी के निष्कलंक सुकुमार प्राणों की पैशाचिक हत्या का अपराध पाषाण-भार की तरह पड़ा हो। बहुत दिनों तक इस नृशंस अपराध की भयंकर अनुभूति का भूत मेरी आत्मा को अत्यंत निष्ठुरता से दबाता रहा। अब भी यह भौतिक आतंक कभी-कभी मेरे मन में जागरित हो उठता है। फिर भी अब मैंने अपने मन को बहुत समझा लिया है और जीवन को एक नई दृष्टि से नए रूप में देखने लगा हूँ और साधारण से साधारण घटना भी कभी-कभी मेरे मन में एक अलौकिक आनंद का आश्चर्य उत्पन्न करने लगती है। किसी स्त्री को देखते ही अब मेरे हृदय में एक श्रद्धा-पूर्ण उत्सुकता का भाव जाग पड़ता है। ऐसा मालूम होने लगता है, जैसे अपने जीवन में पहले स्त्री को देखा भी न हो, अब पहली बार इस आनंददायिनी रहस्यमयी जाति के अस्तित्व का अनुभव मुझे हुआ हो।'

महेंद्र का लंबा लेक्चर समाप्त होते ही चश्माधारी सज्जन 'हा हा' करके ठठा कर हँसते हुए बोले, 'आप भी बड़े मज़े के आदमी हैं। ख़ूब!' यह कह कर वह बेंच पर आराम से लेट गए और उन्होंने आँखें बंद कर लीं। थोड़ी देर बाद वह ज़ोरों से ख़र्राटे लेने लगे।

एक लंबी साँस लेते हुए महेंद्र ने प्राय: अंधकार में अस्पष्ट झलकती हुई गुलाबी साड़ी की ओर देखा। दो आँखों की मार्मिक दृष्टि से तीव्र मोहकता उस अर्द्ध अंधकार में भी विस्मित वेदना की उत्सुक उज्ज्वल रेखाओं को विकीरित कर रही थी। महेंद्र पुलक-विह्वल हो कर मंत्र-मुग्ध-सा बैठा रहा।

घंटी बजी, दिल्ली को जाने वाली गाड़ी के आने की सूचना देते हुए सिग्नल डाउन हुआ। सामने रक्त आकाश-द्वीप के बदले हरे रंग का प्रकाश जल उठा। यह हरित आलोक महेंद्र के मानसपट में साड़ी के गुलाबी रंग के साथ मिल कर एक स्निग्ध-शुचि सौंदर्य-लोक का सृजन करने लगा।

थोड़ी देर में दूर ही से गाड़ी का सर्चलाइट दिखाई दिया। चश्माधारी महाशय महेंद्र के जगाने पर फड़फड़ाते हुए उठे। कुलियों ने सामान सँभाल लिया। भक-भक करती हुई गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ लगी। बड़ी भीड़ थी। चश्माधारी सज्जन को महिलाओं के साथ कुली लोग इंजन के उल्टी ओर बहुत दूर तक ले गए। कहीं स्थान न पा कर अंत में एक डिब्बे में ज़बर्दस्ती घुस गए। महेंद्र भी उन लोगों के साथ-साथ जा रहा था पर जिस डिब्बे में वे लोग घुसे, उस डिब्बे

में स्थान का निपट अभाव देख कर वह विवश हो कर एक दूसरे डिब्बे में चला गया। वहाँ भी काफ़ी भीड़ थी। किसी प्रकार उसने अपने बैठने के लिए थोड़ा-सा स्थान बनाया।
गार्ड ने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। महेंद्र के मस्तिष्क में नाना अस्पष्ट भावनाएँ चक्कर काटने लगीं। दो दिन से उसे नींद नहीं आई थी। आज भी वह अभी तक सो नहीं पाया। इसलिए सोचते-सोचते वह ऊँघने लगा। ऊँघते हुए उसने देखा कि गुलाबी रंग की साड़ी द्रौपदी के चीर की तरह फैलती हुई अकारण सारे आकाश में छा गई है। सहसा दो स्थानों पर वह गगनव्यापी साड़ी फटी और उन दो छिद्रों से हो कर दो वेदनाशील, तीक्ष्ण, उज्ज्वल आँखें तीर की तरह प्रखर वेग से उसकी ओर धावित हो कर एक रूप में मिल कर एक बड़ी आँख के आकार में परिणत हो गईं। वह बड़ी आँखें उसके शरीर को छेद कर उसके हृत्पिंड को छू कर फिर ऊपर आकाश की ओर तीर की तरह छूटीं और आकाश में फैली हुई गुलाबी साड़ी में जा लगीं और फट कर फिर से दो सुंदर, किंतु करुणा-विकल आँखों के आकार में विभक्त हो गईं।

टुँडला स्टेशन पर गाड़ी ठहरने पर महेंद्र पूर्णत: सचेत हो कर बैठ गया। चश्माधारी महाशय दोनों महिलाओं को साथ ले कर कंपार्टमेंट से बाहर उतरे और सामान को कुलियों के हवाले करके उनके साथ बाहर फाटक की ओर चले। महेंद्र ने अपने कंपार्टमेंट से अपनी विश्वविजयिनी को देखा। वह इस उत्सुकता में था कि एक बार अंतिम समय के लिए दोनों की आँखें चार हो जावें, पर न हुईं और गुलाबी साड़ी से आवृत सजीव प्रतिमा व्यस्त विह्वल-सी आगे को निकल गई।
टुँडला से गाड़ी छूटने पर महेंद्र के कानों में चश्माधारी सज्जन के ठठा कर हँसने का शब्द गूँजने लगा। उसके अदृष्ट का चिर व्यंग्य पुकार मानो बार-बार कहता था— हा! हा! आप भी बड़े मज़े के आदमी हैं : ख़ूब!

*****

स्रोत : पुस्तक : हिंदी कहानियाँ (पृष्ठ 142) संपादक : जैनेंद्र कुमार रचनाकार : इलाचंद्र जोशी प्रकाशन : लोकभारती प्रकाशन संस्करण : 1977

This page is intentionally left blank

शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 33-50
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

आलेख

# भारतीय ऐतिहासिक फीचर फिल्में और इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के बीच अंतर्संबंध

मधुबाला रानी
शोधार्थी
केंद्रीय शिक्षा संस्थान
शिक्षा विभाग,दिल्ली विश्वविद्यालय

**सार**

*ऐतिहासिक फिल्में अतीत को दर्शकों से जोड़ने का एक प्रभावी माध्यम हैं। हालांकि, इनमें अक्सर ऐतिहासिक सटीकता से भटकाव होता है, जहां मनोरंजन और तथ्यात्मक कथानक को मिलाया जाता है। यह शोध ऐतिहासिक फिल्मों और पाठ्यपुस्तकों के बीच के अंतर को जांचता है, विशेष रूप से मोहनजोदड़ो (2016), अशोक (2001), पद्मावत (2018), जोधा अकबर (2008), गांधी (1982), और लगान (2001) जैसी फिल्मों में ऐतिहासिक घटनाओं, व्यक्तियों और संस्कृतियों के चित्रण पर ध्यान केंद्रित करता है।इस अध्ययन में इन फिल्मों में ऐतिहासिक विकृतियों का विश्लेषण किया गया है और उनके सामाजिक धारणा और सामूहिक स्मृति पर प्रभाव को उजागर किया गया है। उदाहरण के लिए, पद्मावत रानी पद्मिनी को काल्पनिक रूप में प्रस्तुत करती है, जबकि जोधा अकबर जोधा बाई की पहचान को गलत तरीके से दिखाती है। मोहनजोदड़ो और अशोक जैसी फिल्मों में नाटकीय तत्व ऐतिहासिक प्रामाणिकता को प्रभावित करते हैं। अध्ययन शिक्षकों को इन फिल्मों का उपयोग सहायक उपकरण के रूप में करने और ऐतिहासिक सटीकता, पूर्वाग्रहों और तथ्य एवं कल्पना के बीच के अंतर पर चर्चा को बढ़ावा देने का सुझाव देता है।*

***कूट शब्द :ऐतिहासिक फिल्में, इतिहास शिक्षा, ऐतिहासिक सटीकता, पाठ्यपुस्तकें, सामाजिक धारणा, आलोचनात्मक सोच।***

इतिहास का विषय केवल तिथियां और तथ्यों का संग्रह नहीं है, बल्कि एक कथा है जो शिक्षा में इतिहास की भूमिका को मानव व्यवहार और सामाजिक विकास की जटिलताओं को समझने में मदद करती हैं।उदाहरण के लिए इ. एच. कार ने कहा है कि

"इतिहास में प्रमाणित तथ्यों का एक संग्रह होता है। इतिहासकार को यह तथ्य दस्तावेजों और शिलालेखों आदि में उपलब्ध होते हैं। जैसे मछली विक्रेता के स्लैब में मछली। इतिहासकार उन्हें इकट्ठा करता है,उन्हें घर ले जाता है और उन्हें अपनी पसंद के अनुसार पकाता,पहुंचता है"। घटनाओं के कारण और परिणाम का विश्लेषण करके इतिहासकार उन पैटर्न और रुझानों की पहचान कर सकते हैं जो मानव व्यवहार और सामाजिक परिवर्तनों के बारे में स्पष्टीकरण और भविष्यवाणियां प्रदान करते हैं। इतिहास जानने के लिए बहुत सारे स्रोत हैं,जैसे प्राथमिक स्रोत और द्वितीयक स्रोत। ऐतिहासिक फिल्में भी एक द्वितीय स्रोत का हिस्सा है। स्कूल में इतिहास का अध्ययन करने का उद्देश्य तारीखों और तथ्यों को याद रखने से कहीं आगे तक फैला हुआ है। स्कूल में इतिहास का अध्ययन करने का उद्देश्य बहुआयामी है। केवल अतीत के बारे में ज्ञान प्रदान करना ही नहीं बल्कि आवश्यक कौशल विकसित करना और वर्तमान और भविष्य की गहरी समझ को बढ़ावा देना भी है। सबसे महत्वपूर्ण, इतिहास की शिक्षा सामान्य रूप से और विशेष रूप से ऐतिहासिक विशेषताओं के बारे में आलोचनात्मक सोच और कौशल विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण है। जब छात्र इतिहास का अध्ययन करते हैं तो वह साक्ष्य के विभिन्न स्रोतों का मूल्यांकन करना सिखाते हैं।

प्राथमिक स्रोतों जैसे- मूल दस्तावेज, कलाकृतियां और द्वितीय स्रोत में जैसे विभिन्न व्याख्याओं के बीच अंतर करते हैं। इस प्रक्रिया में इन स्रोतों की विश्वसनीयता की जांच करना, पूर्वाग्रहों को पहचानना और उसके संदर्भ को समझाना शामिल है जिसमें उन्हें बनाया गया था। इस तरह के कठोर विश्लेषण से छात्रों को अच्छी तरह से तर्कपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता विकसित करने में मदद मिलती है। तर्क वितर्क एक ऐसा कौशल है जो न केवल क्षेत्र परिस्थितियों में बल्कि रोजमर्रा की जिंदगी में भी अमूल्य है। ऐतिहासिक फिल्म अतीत की घटनाओं का एक सिनेमाई प्रतिनिधित्व है जो कलात्मक कहानी कहने के साथ तथ्यात्मक सटीकता को जोड़ती है। यह फिल्में इतिहास को सुलभ और आकर्षक बनाने की अपनी क्षमता के लिए मूल्यवान है जो अतीत से भावनात्मक और दृश्य संबंध प्रदान करती

हैं। ऐतिहासिक सटिका से संबंधित उनका सार्वजनिक धारणा और शिक्षा पर प्रभाव महत्वपूर्ण है इतिहास की फिल्में न केवल मनोरंजन करती हैं बल्कि जानकारी और प्रेरणा भी देती हैं। जिससे हमारी दुनिया को आकार देने वाले मानवीय अनुभव की गहरी समझ विकसित होती है।अपने शक्तिशाली अभियानों के माध्यम से वे ऐतिहासिक यादों को संरक्षित और लोकप्रिय बनाते हैं,यह सुनिश्चित करते हुए कि अतीत के सबक और विरासत वर्तमान में गूंजता रहे।इतिहास पर आधारित फिल्मों का प्रभाव सिनेमा से कहीं आगे तक फैला है। वह अक्सर लोगों की धारणाओं और समूह सामूहिक स्मृति को प्रभावित करते हैं जिस ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तियों को याद रखना और समझने का तरीका तय होता है। लोकप्रिय इतिहास की फिल्म में ऐतिहासिक विषयों के प्रति रुचि जग सकती हैं जिससे दर्शक पुस्तक को, चित्रों या संग्रहालय में जाकर अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रेरित होते हैं। ऐतिहासिक फिल्म शिक्षा में भी भूमिका निभाते हैं।

कई शिक्षक छात्रों को इतिहास से जोड़ने और ऐतिहासिक पाठ को दृश्य संदर्भ प्रदान करने के लिए पूरक सामग्री के रूप में फिल्मों का उपयोग करते हैं। इतिहासकार यह भी मानते हैं की फिल्में व्यापक दशकों तक पहुंच कर इतिहास को लोकतांत्रिक बनाने में मदद करती हैं।जबकि अकादमिक इतिहास अक्सर विद्वानों के समूह तक ही सीमित रहता है।फिल्में ऐतिहासिक ज्ञान को आम जनता तक पहुंचा सकते हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में सुलभता बहुत जरूरी है जहां इतिहास की शिक्षा राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक समाज को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। हालांकि इतिहासकार ऐतिहासिक फिल्मों की संभावित कमियों के बारे में भी आगाह करते हैं। वह आलोचनात्मक रूप से देखने के महत्व पर जोर देते हैं क्योंकि फिल्में अक्सर नाटक के प्रभाव के लिए तथ्य और कल्पना को मिला देती हैं।फिल्में कभी-कभी ऐतिहासिक अशुद्धियों को बनाए रख सकती हैं या पक्षपात पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत कर सकती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि शिक्षक फिल्मों का आलोचनात्मक रूप से विश्लेषण करने में छात्रों का

मार्गदर्शन करें, कलात्मक स्वतंत्रता और ऐतिहासिक साक्षी के बीच अंतर करें। यह आलोचनात्मक जुड़ाव छात्रों की मीडिया साक्षरता और एतिहासिक समझ को बढ़ा सकता है।

**अध्ययन क्षेत्र और उसकी समझ**

विभिन्न साहित्य लिखो और शोध अध्ययनों की समीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकला है की कुछ ही शोधकर्ताओं ने ऐतिहासिक फिल्म और अन्य ऐतिहासिक दस्तावेजों के बीच संबंधों पर ध्यान केंद्रित किया है।कुछ शोधकर्ताओं ने यह भी संकेत दिया कि पारंपरिक पाठ्यपुस्तकों की तुलना में ऐतिहासिक फिल्मों के शैक्षिक प्रभाव पर शोध की कमी है। विशेष रूप से इस बारे में की यह विभिन्न मध्यम छात्रों की समझ और ऐतिहासिक ज्ञान को बनाए रखने को कैसे प्रभावित करते हैं। फिल्मों में ऐतिहासिक आख्यानों की सटीकता और प्रामाणिकता और पाठ्य पुस्तकों के विवरणों के साथ उनका संश्लेषण उपकरण के रूप में उनकी वैधता का आकलन करने के लिए भविष्य में आगे की जांच की आवश्यकता है। "सिनेमैटिक रिप्रेजेंटेशन एंड हिस्टॉरिकल अंडरस्टैंडिंग"(2019) पर किए गए एक अन्य आख्यान में कुमार ने स्वीकार किया की फिल्में ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति विद्यार्थियों की रुचि और समझ को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकती हैं, लेकिन उनमें इतिहास के विकृत या काल्पनिक संस्करण प्रस्तुत करने का जोखिम भी होता है। समीक्षा से यह बात सामने आती है कि इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में ऐतिहासिक फिल्मों के आलोचनात्मक विश्लेषण पर कम शोध किया गया है। शोधकर्ता ने अपनी परियोजना के लिए भारत में इतिहास के पाठ्यपुस्तक और सिनेमा इतिहास के बीच के हस्तक्षेप का पता लगाने का विकल्प चुना क्योंकि शोधकर्ता मीडिया शिक्षा और सामूहिक समिति के बीच गतिशील संबंधों से वंचित थे। पाठ्य पुस्तकें और सिनेमा दोनों ही इस बात को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं कि हम इतिहास को कैसे देखते हैं और समझते हैं। फिर भी

वह अक्सर अलग-अलग कथाएं और व्याख्याएं प्रस्तुत करते हैं। इन दो माध्यमों के बीच अंतर संबंधों और संघर्षों की जांच करके शोधकर्ता का लक्ष्य ऐतिहासिक प्रतिनिधित्व की जटिलताओं और सांस्कृतिक और राजनीतिक कारकों के प्रभाव को उजागर करना है।

## अध्ययन का औचित्य

हाल के दिनों में ऐतिहासिकता के नाम पर बहुत सी फिल्मों के प्रसार के साथ वास्तविक तथ्यों और विकृत तथ्यों के बीच अंतर करना बहुत मुश्किल है। फिल्म की करिश्माई की क्षमता काफी हद तक उनकी दृश्य प्रभाव के कारण होती है। लोग फिल्मों के संदेश और कथाओं को अपेक्षाकृत आसान तरीके से समझते हैं। विनम्र यह है कि लोग शायद ही कभी फिल्म की काल्पनिक विशेषताओं को अपने दिमाग में रखने की जहां मत उठाते हैं। और वह अक्सर यह मानने लगते हैं की फिल्में विशेष ऐतिहासिक घटनाओं के तथ्यों का तथ्यात्मक रूप से सही चित्रण है। यह विडंबना इस तथ्य से और बढ़ जाती है कि बुजुर्ग लोगों और स्कूल जाने वाले छात्रों के बीच स्कूल की पाठ्य पुस्तकों और अन्य ऐतिहासिक साहित्य की उपयोगिता को कम करने की स्पष्ट प्रवृत्ति है। इस स्थिति ने शोधकर्ता को ऐतिहासिक फिल्मों और इतिहास की पाठ्यपुस्तक के बीच अंतर संबंध के बारे में यह शोध करने के लिए प्रेरित किया।

## शोध प्रश्न

- फिल्म के ऐतिहासिक वर्णन की तुलना पाठ्यपुस्तकों और अन्य ऐतिहासिक साहित्य में दिए गए तथ्यों से करना किस हद तक संभव है?
- इन फिल्मों में प्रमुख ऐतिहासिक अशुद्धियां क्या है?
- कथानक और चरित्र विकास में ऐतिहासिक तथ्यों को किस प्रकार बढ़ाते या बिगड़ते हैं?

- समकालीन परिप्रेक्ष्य और मुद्दे किस प्रकार इन फिल्मों में इतिहास के चित्रण को आकार देते हैं?

## शोध उद्देश्य

- ऐतिहासिक फिल्मों में ऐतिहासिक तथ्यों के चित्रण की सटीकता और प्रमाणिकता का आकलन करना।
- ऐतिहासिक फिल्मों और ऐतिहासिक स्रोतों में पारस्पर विरोधी ऐतिहासिक कथाओं का मूल्यांकन करना।
- फिल्म, पाठ्य पुस्तक और ऐतिहासिक साहित्य में ऐतिहासिक चरित्र के चित्रण की तुलना करना इसके साथ ही फिल्म के कथानक और चरित्र को विकसित करने में फिल्म में प्रयुक्त अभियानों की योगदान की जांच करना।
- समकालीन संदर्भों के प्रभाव की जांच करना जो फिल्म निर्माता की पसंद और दर्शकों की व्याख्या को आकार देते हैं।

## शोध विधि

गुणात्मक शोध के भीतर ऐतिहासिक और काठात्मक पद्धतियों का संयोजन इस शोध प्रबंध विषय के लिए विशेष रूप से उपयुक्त ऐतिहासिक पद्धति फिल्मों की सटीकता और प्रमाणिकता को समझने के लिए आवश्यक तथ्य और प्रासंगिक आधार प्रदान करती हैं इस बीच कथा आत्मक पलटी कहानी कहने की तकनीक और सिणमई उपकरणों में अंतर दृष्टि प्रदान करती है जो दर्शकों के ऐतिहासिक घटनाओं के साथ जुड़ाव और व्याख्या को आकर देती है साथ में यह पद्धतियां एक व्यापक विश्लेषण की अनुमति देता है जो ऐतिहासिक फिल्मों में निहित तथ्यात्मक अखंडता और कलात्मक अभिव्यक्ति दोनों का सम्मान करती हैं यह दोहरा डिस्टिक कोर्ट एक सूक्ष्म आलोचना को सक्षम करता है जो

ऐतिहासिक वास्तविकता और सिनेमाई प्रतिनिधित्व के बीच परस्पर क्रिया को उजागर करता है अतः इस बात की समझ को सम्मिलित करता है की फिल्में सार्वजनिक इतिहास और सांस्कृतिक समिति में कैसे योगदान देती हैं

## प्रतिदर्श

इस शोध में छः ऐतिहासिक फिल्मों का चयन किया गया। जो भारतीय इतिहास की तीन अलग-अलग समयावधि का प्रतिनिधित्व करती हैं। जैसे-प्राचीन काल, मध्यकाल और भारत का आधुनिक काल। इसे नीचे तालिका में दर्शाया गया है-

**तालिका-1 समयावधि और फिल्म चयन**

| समयवधि | फिल्मों |
|---|---|
| प्राचीन काल | मोहनजो डरो, (2016) |
| | अशोक ,(2001) |
| मध्यकाल | जोधा अकबर,(2008) |
| | पद्मावत ,(2018) |
| आधुनिक काल | गांधी, (1986) |
| | लगन,(2001) |

## परिसीमन

ऐतिहासिक फिल्म और इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के बीच अंतर्संबंध अध्ययन समिक्षा निम्नलिखित है।

- यह शोध केवल भारतीय संदर्भ तक ही सीमित है जिसमें भारतीय इतिहास को दर्शाने वाली फिल्मों और पाठ्य पुस्तकों का विश्लेषण किया गया है।
- यह शोध विशेष रूप से विशिष्ट ऐतिहासिक फिल्मों पर केंद्रित है। जैसे-द्मावत,मोहनजोदड़ो,जोधा अकबर, अशोक गांधी ,लगन का तुलनात्मक अध्यन भारतीय स्कूलों की एनसीईआरटी इतिहास की पुस्तकों का उपयोग करके की गई है।

- (विश्लेषित फिल्में 1982 और 2018 के बीच निर्मित की गई थी।

**व्याख्या और विश्लेषण**

आशुतोष गोवारिकर द्वारा निर्देशित "मोहेंजो दारो"" एक महत्वाकांक्षी परियोजना है। जो दुनिया के सबसे प्राचीन शहरी केंद्रों में से एक को जीवन में लाती है। यह फिल्म 2600-1900 ईसा पूर्व के आसपास के समय को दर्शाया है। यह सर्मन नामक एक युवा किसान की यात्रा को अनुसरण करती है, जो मोहनजोदड़ो के भव्य शहर में प्रवेश करता है। फिल्म ऐतिहासिक तथ्यों को काल्पनिकता के साथ जोड़ती है, जो मनोरंजन के लिए तो ठीक है, लेकिन इतिहासकारों के बीच इस फिल्म के ऐतिहासिक चित्रण पर सवाल उठाए गए हैं।

मोहनजोदड़ो, जो वर्तमान पाकिस्तान में स्थित है, प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता का एक प्रमुख शहर था। यह अपनी उन्नत शहरी योजना, प्रभावशाली वास्तुकला, और उन्नत जल प्रबंधन प्रणालियों के लिए प्रसिद्ध था, और यह सभ्यता सैकड़ों वर्षों तक फलती-फूलती रही, लेकिन अचानक इसके पतन का कोई स्पष्ट कारण नहीं मिला। पुरातात्विक खुदाई से जीवनशैली के बारे में बहुत कुछ पता चला है, लेकिन कई पहलुओं पर अब भी रहस्य बना हुआ है, खासकर क्योंकि उनकी लिपि को अब तक समझा नहीं जा सका है।

फिल्म में हड़प्पा सभ्यता के कपड़ों को चित्रित किया गया है, जिसमें पुरुषों ने साधारण लंगोटी पहनी थी, जबकि महिलाएं सूती या ऊनी स्कर्ट पहनती थीं। यह चित्रण एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों में उल्लिखित पुरातात्विक तथ्यों से मेल नहीं खाता, जहां बताया गया है कि हड़प्पा लोग सामान्य और व्यावहारिक कपड़े पहनते थे। फिल्म में हड़प्पा लोगों को आधुनिक फैशन के अनुसार तैयार किया गया है, जो ऐतिहासिक साक्ष्यों से मेल नहीं खाता है।

एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों में हड़प्पा आभूषणों का भी विस्तार से उल्लेख है, जैसे हार, चूड़ियां, बालियां, और मोती, जो सोने, चांदी, तांबे और सेमी-कीमती पत्थरों से बने होते थे। हालांकि, फिल्म में इन आभूषणों का आकार और डिजाइन अतिरंजित किया गया है, जो ऐतिहासिक वास्तविकता से मेल नहीं खाता है।

फिल्म में कृषि के महत्व को बहुत कम चित्रित किया गया है, जबकि एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों में हड़प्पा सभ्यता की कृषि प्रणाली के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। फिल्म में खेती के कार्यों को केवल कुछ दृश्यों में दिखाया गया है, जो ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाते।

2001 की फिल्म "अशोक", जिसे संतोष शिवन ने निर्देशित किया है, सम्राट अशोक के जीवन को दर्शाती है, जो भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं और जो एक क्रूर विजेता से बौद्ध धर्म के अनुयायी में बदल गए। फिल्म में अशोक के शासन की प्रमुख घटनाओं को संक्षेप में दिखाया गया है, जैसे कि कलिंग युद्ध और उनके बौद्ध धर्म को अपनाने की प्रक्रिया।फिल्म में काल्पनिक तत्वों को जोड़ा गया है, जैसे कि कौरवकी नामक एक पात्र, जिसे एक प्रेमिका के रूप में दिखाया गया है, जो अशोक के नैतिक जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालांकि, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह एक प्रमुख अशुद्धता है, क्योंकि कौरवकी का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।फिल्म में अशोक के जीवन को सरल किया गया है, और कई महत्वपूर्ण घटनाओं को संक्षेपित किया गया है, जिनमें अशोक का बौद्ध धर्म को अपनाने का कारण केवल कलिंग युद्ध से उत्पन्न हुआ आघात दिखाया गया है। ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के अनुसार, यह परिवर्तन एक लंबी और विचारशील प्रक्रिया थी, जो वर्षों की आत्मचिंतन और नैतिक विचार से प्रेरित थी।

"पद्मावत" की समझ के लिए, हमें उसके कवि मलिक मुहम्मद जायसी के संदर्भ को देखना होगा। जायसी का काम ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि यह एक रूपक के रूप में काम करता है, जो मानव आत्मा और भगवान के बीच के संबंध को दर्शाता है। जायसी का "पद्मावत" एक काव्य रचना है, जो ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नहीं है, बल्कि एक साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से लिखा गया है। इतिहासकारों के अनुसार, 14वीं सदी के ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में रानी पद्मिनी का कोई उल्लेख नहीं है, और यह कहानी लगभग 250 वर्षों बाद जायसी की काव्य रचना में उत्पन्न हुई थी। "पद्मावत" को एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में प्रस्तुत करना गलत है, क्योंकि यह एक काव्य रचना है और इसका उद्देश्य  सांस्कृतिक संदेश देना था।

"जोधा अकबर" एक 2008 की भारतीय ऐतिहासिक रोमांटिक फिल्म है। जिसे आशुतोष गोवारिकर ने निर्देशित किया है। फिल्म में अकबर और जोधा बाई के विवाह को दिखाया गया है, लेकिन यह फिल्म ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कई मामलों में गलत है। फिल्म में जोधा बाई को अकबर की पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार, जोधा बाई दरअसल अकबर के बेटे जहांगीर की पत्नी थीं। फिल्म में अकबर और जोधा बाई के रिश्ते को अधिक व्यक्तिगत और रोमांटिक रूप में दिखाया गया है, जबकि एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों में अकबर की राजपूतों के साथ वैवाहिक संबंधों की राजनीतिक रणनीति पर जोर दिया गया है।

"गांधी" (1982) एक जीवित जीवनी पर आधारित फिल्म है, जिसमें महात्मा गांधी के जीवन को दिखाया गया है। फिल्म में गांधी के जीवन के प्रमुख घटनाओं जैसे दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव का सामना करना और भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष करना दिखाया गया है।फिल्म में जनरल रेजिनाल्ड डाययर को एक निर्दयी व्यक्ति के

रूप में दिखाया गया है, जबकि एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों में डाययर के कार्यों का विस्तृत वर्णन है, जिसमें उनके कृत्यों के राजनीतिक संदर्भ को समझाया गया है।"लगान" (2001) एक ऐतिहासिक खेल-नाटक फिल्म है। जिसमें भारतीय गांवों के एक समूह द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ क्रिकेट मैच खेला जाता है। यह फिल्म भारतीयों और ब्रिटिशों के बीच औपनिवेशिक संघर्ष को दिखाती है, लेकिन इसमें औपनिवेशिक शोषण की जटिलताओं को सरल बनाया गया है।

फिल्म में दिखाया गया है कि ब्रिटिशों ने भारतीयों को शोषित किया, लेकिन एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों में यह भी बताया गया है कि स्थानीय अभिजात वर्ग और जमींदारों ने भी ब्रिटिशों के साथ मिलकर भारतीयों का शोषण किया था। फिल्म का यह पहलू औपनिवेशिक वास्तविकताओं को अधिक सरल तरीके से पेश करता है।जैसा कि हम जानते हैं कि फ़िल्में मुख्य रूप से मनोरंजन के उद्देश्य से बनाई जाती हैं, लेकिन जब हम ऐतिहासिक फ़िल्मों की बात करते हैं, तो ये फ़िल्में केवल मनोरंजन या पैसा कमाने के लिए नहीं बनाई जातीं। ऐतिहासिक फ़िल्में कुछ तथ्यात्मक घटनाओं से गहराई से जुड़ी होती हैं। जो अतीत में घटी थीं और फिल्म निर्माता की ज़िम्मेदारी होती है कि वह इन तथ्यों को ऐतिहासिक सटीकता के साथ पर्दे पर प्रस्तुत करें।

इस शोध अध्ययन का उद्देश्य ऐतिहासिक फ़िल्मों और ऐतिहासिक ग्रंथों के बीच मौजूद अंतर को समझना था। ऐतिहासिक फ़िल्मों और इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के बीच का यह अंतर यह दिखाता है कि कैसे इतिहास को लोकप्रिय संस्कृति और शैक्षणिक विमर्श में अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत और समझा जाता है।ऐतिहासिक फ़िल्में जैसे "पद्मावत," "मोहेंजो दारो," "जोधा अकबर," "अशोक," "गांधी," और "लगान" दर्शकों को ऐतिहासिक कथाओं से जोड़ने का एक अनूठा दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। ये फ़िल्में, जबकि मनोरंजक और दृश्य रूप से आकर्षक हैं, अक्सर रचनात्मक स्वतंत्रताओं का सहारा लेती हैं,

जिससे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक गलतियाँ और जटिल घटनाओं और पात्रों का सरलीकरण होता है।उदाहरण के लिए, "पद्मावत" और "जोधा अकबर" जैसी फ़िल्में ऐतिहासिक रिकॉर्ड से हटकर उन पात्रों और घटनाओं को प्रस्तुत करती हैं, जिन्हें विश्वसनीय ऐतिहासिक स्रोतों द्वारा प्रमाणित नहीं किया गया है। "पद्मावत" को रानी पद्मिनी को एक ऐतिहासिक चरित्र के रूप में प्रस्तुत करने के लिए आलोचना का सामना करना पड़ा है। जबकि अधिकांश इतिहासकार उन्हें काल्पनिक मानते हैं। इसी तरह, "जोधा अकबर" में जोधा बाई को अकबर की पत्नी के रूप में दिखाया गया है, जबकि इतिहासकार उन्हें जहांगीर की पत्नी मानते हैं।

इसके अतिरिक्त, "मोहेंजो दारो"और "अशोक" जैसी फ़िल्में प्राचीन इतिहास को चित्रित करने में आने वाली चुनौतियों को दिखाती हैं। सीमित पुरातात्विक साक्ष्य और नाटकीय कहानी कहने की आवश्यकता के कारण ये फ़िल्में स्थापित ऐतिहासिक तथ्यों से अक्सर भटक जाती हैं।ऐतिहासिक फ़िल्में "गांधी" और "लगान" इस बात का उदाहरण देती हैं कि कैसे फ़िल्में ऐतिहासिक समझ को उजागर कर सकती हैं और उसे विकृत भी कर सकती हैं। जबकि "गांधी" महात्मा गांधी के स्वतंत्रता संग्राम की अहिंसात्मक लड़ाई की भावना को पकड़ती है, यह स्वतंत्रता आंदोलन की जटिल राजनीतिक गतिशीलता और अन्य नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिकाओं को नजरअंदाज करती है। दूसरी ओर, "लगान" औपनिवेशिक उत्पीड़न को क्रिकेट मैच के माध्यम से नाटकीय रूप में प्रस्तुत करती है, जिससे व्यापक सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ को सरल बना दिया गया है और उपनिवेशवाद के ढांचे में स्थानीय अभिजात वर्ग की मिलीभगत को अनदेखा कर दिया गया है। इन फ़िल्मों की समीक्षा एनसीईआरटी इतिहास की पाठ्यपुस्तकों की पृष्ठभूमि में करने पर ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण में एक बड़ा अंतर स्पष्ट होता है। पाठ्यपुस्तकें संतुलित और साक्ष्य-आधारित ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्रदान करती हैं, जो अक्सर सिनेमाई रूपांतरण में खो जाने वाली जटिलताओं और बारीकियों पर ध्यान केंद्रित करती हैं।

यह शोध ऐतिहासिक फ़िल्मों के साथ आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने के महत्व पर जोर देता है। यह फ़िल्मों को इतिहास को लोकप्रिय बनाने के उपकरण के रूप में उपयोग करने और दर्शकों को ऐतिहासिक अध्ययन में गहराई से जानने और मनोरंजन व तथ्यात्मक इतिहास के बीच अंतर  करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता पर बल देता है।इस अध्ययन के आधार पर, शोधकर्ताओं का तर्क है कि फ़िल्मों में ऐतिहासिक तथ्यों की अशुद्धता का सामाजिक धारणा पर गहरा और बहुआयामी प्रभाव पड़ता है, जो अक्सर सामूहिक स्मृति और जनता की ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों और कालखंडों के प्रति समझ को आकार देती है।

ऐतिहासिक फ़िल्मों का व्यापक पहुंच और भावनात्मक अपील के कारण दर्शकों पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिससे ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के प्रति लोगों की धारणा प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, "पद्मावत" और "जोधा अकबर" जैसी फ़िल्में ऐतिहासिक कथाओं को काल्पनिक और रूमानी रूप देने के कारण व्यापक भ्रांतियों को जन्म देती हैं। रानी पद्मिनी और जोधा बाई को केंद्रीय ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के रूप में चित्रित करना, जबकि उनके बारे में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है, इन पात्रों को जनता के बीच तथ्यों के रूप में स्थापित करता है, जिससे इतिहास को लोकप्रिय स्मृति में फिर से लिखा जाता है।

इन अशुद्धियों के कारण रूढ़ियों और पूर्वाग्रहपूर्ण कथाओं को भी बल मिलता है। उदाहरण के लिए, "पद्मावत" में अलाउद्दीन खिलजी को एक बर्बर आक्रमणकारी के रूप में चित्रित करना जटिल ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और उनकी प्रेरणाओं के प्रति एक सरल दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। इसी प्रकार, "जोधा अकबर" अकबर और जोधा बाई के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध प्रस्तुत करता है, जो मुगल-राजपूत संबंधों की जटिल और अक्सर विवादास्पद प्रकृति को कम कर देता है।ऐतिहासिक अशुद्धियां इस बात को भी प्रभावित

करती हैं कि ऐतिहासिक घटनाओं को कैसे संदर्भित किया जाता है। "मोहेंजो दारो" और "अशोक" जैसी फ़िल्में प्राचीन सभ्यताओं और शासकों के समृद्ध और जटिल इतिहास को सरल बना देती हैं, जिससे उनके योगदान और विरासत को एक ऐसी कहानी में बदल दिया जाता है जो केवल सिनेमा के लिए उपयुक्त हो।

"लगान" और "गांधी" जैसी फ़िल्मों में औपनिवेशिक इतिहास के चित्रण का भी समकालीन समझ पर प्रभाव पड़ता है। "लगान" में केवल ब्रिटिश अधिकारियों के अत्याचारों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जबकि स्थानीय सहयोगियों की भूमिका की अनदेखी की गई है। यह फ़िल्म उपनिवेशवाद के शोषण को एक हल्के ढंग से प्रस्तुत करती है, और महत्वपूर्ण मुद्दों पर कम ध्यान देती है। यह औपनिवेशिक इतिहास के बारे में एक सीमित दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जिसमें स्थानीय सत्ता प्रणालियों और प्रतिरोध के आंतरिक जटिलताओं को अनदेखा किया गया है।
इसके विपरीत, "गांधी" जैसी फ़िल्म, हालांकि इसमें ऐतिहासिक अशुद्धियां हैं, महत्वपूर्ण मूल्यों को उजागर करने और आंदोलनों को प्रेरित करने में सकारात्मक भूमिका निभा सकती है। गांधी की फ़िल्म उनके अहिंसा और सविनय अवज्ञा के दर्शन को उजागर करती है, जो युवा पीढ़ियों और अन्य लोगों को प्रेरित कर सकती है। हालांकि, यहां भी ऐतिहासिक घटनाओं और अन्य प्रमुख व्यक्तियों के योगदान का सरलीकरण देखा जा सकता है, जिससे समाज और राजनीतिक संघर्षों की जटिल वास्तविकताओं की अनदेखी होती है।

ऐतिहासिक अशुद्धियों का प्रभाव केवल व्यक्तिगत भ्रांतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका व्यापक सामाजिक प्रभाव भी होता है। ये राष्ट्रीय पहचान, सांस्कृतिक स्मृति, और ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं के प्रति सामूहिक दृष्टिकोण को आकार दे सकती हैं।इतिहासकारों और शिक्षकों की एक प्रमुख भूमिका होती है कि वे इन अशुद्धियों को संबोधित करें और फ़िल्मों में प्रस्तुत सरल कथाओं को चुनौती देने के लिए गहन और

साक्ष्य-आधारित दृष्टिकोण प्रदान करें।शोधकर्ता यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ऐतिहासिक फ़िल्मों में तथ्यात्मक अशुद्धियां समाज पर गंभीर प्रभाव डालती हैं। ये फ़िल्में ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को रोमांटिक और काल्पनिक रूप में पेश करके व्यापक स्तर पर गलत धारणाएं उत्पन्न करती हैं। "पद्मावत" और "जोधा अकबर" जैसी फ़िल्मों में, जिन पात्रों का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, उन्हें प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह न केवल ऐतिहासिक सटीकता को प्रभावित करता है, बल्कि सामूहिक स्मृति को भी विकृत करता है।

इतिहास को गलत ढंग से प्रस्तुत करने से सांस्कृतिक और धार्मिक पूर्वाग्रहों को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिए, "पद्मावत" में अलाउद्दीन खिलजी को एक बर्बर आक्रमणकारी के रूप में दिखाने से एकतरफा दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। इसी तरह, "अशोक" और "मोहेंजो दारो"" जैसी फ़िल्में प्राचीन सभ्यताओं और सम्राटों के जटिल इतिहास को सरल बनाकर प्रस्तुत करती हैं, जिससे उनकी वास्तविक विरासत का ह्रास होता है।"लगान" में औपनिवेशिक शोषण को केवल ब्रिटिश अधिकारियों के अत्याचार तक सीमित कर दिया गया है, जबकि स्थानीय अभिजात वर्ग की मिलीभगत को नजरअंदाज कर दिया गया है। इससे औपनिवेशिक इतिहास के बारे में सीमित और गलत धारणाएं बनती हैं।

शोधकर्ताओं का मानना है कि ऐतिहासिक फ़िल्मों का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं होना चाहिए। फ़िल्म निर्माताओं की यह जिम्मेदारी है कि वे गहन ऐतिहासिक शोध करें और ऐतिहासिक तथ्यों को सही तरीके से प्रस्तुत करें। फ़िल्मों में दिखाए गए गलत तथ्यों और पूर्वाग्रहों से समाज में ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के बारे में गलत समझ पैदा हो सकती है।अंततः, यह अध्ययन यह बताता है कि ऐतिहासिक फ़िल्मों का उपयोग शिक्षा के उद्देश्य से किया जा सकता है, लेकिन केवल तभी जब इन्हें ऐतिहासिक ग्रंथों और साक्ष्यों के साथ मिलाकर प्रस्तुत किया जाए। शोधकर्ता इस बात पर जोर देते हैं कि समाज को इतिहास की

जटिलताओं की सराहना करने और गलत तथ्यों की पहचान करने के लिए गहरी समझ और आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

## निष्कर्ष

शोध और खोज के माध्यम से शोधकर्ता मल इस निष्कर्ष पर पहुँचा हैं कि ऐसे कई कारक हैं जो इतिहास के पाठ्य पुस्तकों के साथ ऐतिहासिक फिल्म का विशेषण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम कह सकते हैं की ऐतिहासिक फिल्में केवल मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं होती है। ऐतिहासिक फिल्में अतीत में घटित कुछ तथ्यात्मक घटनाओं से जटिल रूप से जुड़ी होती हैं। दूसरी ओर फिल्म निर्माता को भी उचित ऐतिहासिक स्रोतों के साथ ऐसे तथ्यों को पर्दे पर उजागर करने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ऐतिहासिक फिल्म और इतिहास के पाठ्य पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों के बीच उपलब्ध यंत्रों को बताना था।

ऐतिहासिक फिल्मों और इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के बीच अंतर संबंध इस बात की आकर्षक खोज प्रस्तुत करता है की प्रमुख संस्कृति बनाम अकादमी चर्चा में इतिहास को कैसे दर्शाया और समझा जाता है। प्रत्येक फिल्म जीवन के प्रति एक अनूठा दृष्टिकोण देती है।जिसके माध्यम से दर्शन अथवा विद्यार्थी ऐतिहासिक कथाओं से जुड़ जाते हैं। ऐसी फिल्में आनंद लेते और कल्पना करते समय ऐतिहासिक अनूपयुक्तिता को अधिक सरलकृत दृश्य या जटिल दृश्य के साथ सामने लाती हैं। इन सभी विश्लेषण के बाद शोधकर्ता का मानना है की ऐतिहासिक फिल्मों में इतिहास को सुलभ और उत्साह वर्धन बनाने की क्षमता होती है। जबकि दूसरी ओर कुछ अशुद्धियां अतीत की सामाजिक चेतना को काफी हद तक बाधित कर सकती हैं। इन फिल्मों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखना और इतिहास की उचित समझ सुनिश्चित करने के लिए उन्हें ऐतिहासिक अध्ययन के साथ पूरक बनाना महत्वपूर्ण है।

## अध्ययन के निहितार्थ

- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने ऐतिहासिक फिल्मों और घटनाओं के माध्यम से सामाजिक धारणाओं को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाने का प्रयास किया है यह भी बताया गया कि किस प्रकार ऐतिहासिक फिल्में वास्तविक अतीत की समझ और साक्षी को विकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- अध्ययन से पता चलता है की फिल्म निर्माता ऐतिहासिक फिल्मों के माध्यम से हमारे युवा पीढ़ी और उनके विचार प्रक्रिया को आकार देने के लिए भी जिम्मेदार हैं।
- अध्ययन का निष्कर्ष यह दर्शाता है की फिल्में वास्तविक तत्व और अतीत की घटनाओं को नजर अंदाज करके समाज को एक आयामी कथाओं की और व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं।
- गहन विश्लेषण के बाद शोधकर्ता ने पाया की ऐतिहासिक फिल्में मनोरंजन और पैसा कमाने के नाम पर हमारे युवा पीढ़ी को अतीत की वास्तविक समझ से भटक रही हैं।

*****

## सदंर्भ


- Batra, P. (Ed.). (2013). Social science learning in schools: Perspective and challenges. SAGE Publications.
- Carr, E. H. (1961). What is history? Penguin Books.
- Cohen, L., & Manion, L. (Year). Research Methods in Education (5th ed.). Routledge.
- Creswell, J. W. (2012). Educational research: Planning, conducting, and evaluating
- quantitative and qualitative research (4th ed.). Pearson.

- Davis, N. Z. (2001). Reel history: Historical films as a medium for historical inquiry. Historical Journal of Film, Radio and Television, 21(4), 377-389.
- de Groot, J. (2009). Engaging with history: Public perceptions through historical films. Public History Review, 16(1), 45-59.
- Dwiwedi, H. P. (1975). Jayasi and his Padmavat. Rajkamal Prakashan.
- Dwyer, R. (2006). Bollywood and history: The problematics of representing the past in Indian cinema. Film & History, 36(1).
- Dwyer, R. (2006). Filming the Gods: Religion and Indian Cinema. Routledge.
- Edison, T. (Director). (1895). The execution of Mary, Queen of Scots [Film]. Edison Manufacturing Company.
- Gray, D. E. (2013). Doing research in the real world (5th ed.). Sage Publications.
- Griffith, D. W. (Director). (1915). The Birth of a Nation [Film]. Epoch Producing Corporation.
- Guha, R. (2013). Gandhi before India. Penguin Books.
- Kumar, K. (2004). Origins of India's "Textbook Culture". Orient Longman.
- Kumar, R. (2019). Cinematic representation and historical understanding. Publisher unknown.

शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 51-76
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

आलेख

# प्रारंभिक विद्यालय में विद्यार्थियों की बुनियादी साक्षरता के सापेक्ष पढ़ने की समझ का अध्ययन

पवन कुमार
शिक्षाशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश
ईमेल: pawan.k28890@gmail.com

## सार

प्रस्तुत आलेख में प्रारंभिक कक्षा के विधर्थियों के पढ़ने की समझ का एवं पढ़ने के प्रति रुझान की जांच पड़ताल की गई है। इस शोध पत्र के माध्यम से हम शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पड़ताल भी करने का प्रयास किया गया है। दरअसल, आज के शिक्षण कार्यक्रमों में किस प्रकार से छात्रों को भाषा शिक्षण के लिए तैयार किया जा रहा है। किसी भी संस्कृति में भाषा की समझ का होना अति आवश्यक है क्योंकि भाषा के माध्यम से समाज में विचारों का आदान प्रदान संभव होता है एवं भाषा विकास के लिए नए विद्यार्थियों का पढ़ने के समझ एवं पढ़ने के प्रति पारंगत होना जरूरी है इसके लिए शिक्षकों में सही पढ़ाने की कला की जानकारी होना एवं विद्यार्थियों में सही तरीके से पढ़ने के मार्ग पर प्रशस्त होना आवश्यक है। जैसा कि एन.सी.ई.आर.टी. अपने पाठयपुस्तक निर्माण एवं भाषा सीखने के लिए इस बात पर जोर देती है की भाषा के विकास हेतु समझ के साथ सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखने के पुनर्निरक्षण अत्यंत आवश्यकता है।विख्यात अमेरिकी भाषाविद नॉम चोमस्की के अनुसार "प्रत्येक बालक में आनुवंशिक रूप से व्याकरण की संरचनाओं का एक आंतरिक एवं जन्मजात साँचा होता है जिसे सार्वभौमिक शब्दशास्त्र (Universal Grammar) कहा जाता है, जिसके द्वारा बालक स्वयं अपनी भाषा निर्मित करता है। एक परिवार, अध्यापक, विद्यालय, समाज, समुदाय और राष्ट्र को बालक के भाषा के अर्जन हेतु पृथक-पृथक परन्तु एक ही दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता है। पढ़ने की समझ के पड़ताल के लिए हम विभिन्न प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में जाकर अवलोकन एवम साक्षात्कार के द्वारा यह जानने का प्रयास किया है की तत्कालीन समय में विद्यार्थियों में भाषा पढ़ने की समझ कैसे विकसित की जा रही है।

**कूटशब्द: बुनियादी साक्षरता, पठन, समझ, भाषा, अधिगम।**

साक्षरता का अर्थ है साक्षर होना अर्थात पढने और लिखने की क्षमता से संपन्न होना। सरल शब्दों में कहें तो जो पढ़ और लिख सकता है वही साक्षर होगा। अलग अलग देशों में साक्षरता के अलग अलग मानक हैं। भारत में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अपना नाम लिखने और पढने की योग्यता हासिल कर लेता है तो उसे साक्षर माना जाता है।

साक्षरता से तात्पर्य किसी शब्द या वाक्य को पढ़ने या समझने से है। हर एक व्यक्ति जो शब्दों को पढ़ सकता है, उन्हे समझ सकता है तो वह व्यक्ति एक शिक्षित व्यक्ति के रूप मे गिना जाता है। अतः इस आधार पर हम कह सकतें है, की जब लोगों मे शब्दों को पढ़ने तथा उन्हे समझने का ज्ञान हो जाता है, तो इसे साक्षरता कहते है । ऐसे व्यक्ति जो पढ़ाई लिखाई से संबंधित कार्य करने मे सक्षम है उन्हे साक्षर व्यक्तियों की सूची मे रखा जाता है। अलग अलग देशों मे साक्षरता के भिन्न भिन्न मानक होते है। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अनुसार भारत मे यदि कोई व्यक्ति अपना स्वयं का नाम लिखने और बोलने की योग्यता प्राप्त कर लेता है तो वह एक साक्षर व्यक्ति माना जाता है।

साक्षरता शब्द स + अक्षर से बना है। जिसका मतलब ज्ञान रखने वाला अर्थात पढ़ा लिखा होना है। अतः जो व्यक्ति साक्षर है वह लोगों के बीच वाद संवाद कर सकता है, वह अपने विचार लोगों के समक्ष रख सकता है। इससे लोगों के बीच उसकी पहचान बनती है। इसके अलावा वह राज्य कार्यों मे भी अपनी भूमिका निभा सकता है । इस आधार पर हम कह सकतें है की लोगों का साक्षर होना बहुत जरूरी है । इससे हमारे देश के विकास मे भी काफी वृद्धि देखने को मिलती है।

बुनियादी साक्षरता:बुनियादी साक्षरता का अर्थ है मौखिक भाषा विकास, डिकोडिंग ( ध्वनि और आकार में तालमेल) पढ़ने का प्रभाव, पाठ बोधन एवं लेखन में रुचि तथा दक्षता प्राप्त करना है। बुनियादी संख्या ज्ञान का अर्थ है संख्या बोध, आकार और स्थानिक संबंध, नाप, आदि में रुचि तथा दक्षता प्राप्त करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार,"देश में नई शिक्षा नीति लागू की गई है इस नीति को उसकी व्यापकता और समावेशिका के कारण हर दिशा में प्रोत्साहन मिल रहा है। यह पहली ऐसी नीति है जो देश में औपचारिक संस्थागत शिक्षा में प्री स्कूलिंग के विचार को बल प्रदान करती है। इस नीति का एक और विशिष्ट पहलू यह भी है कि इसमें कक्षा तीन तक के बच्चों में बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान यानी एफ. एल. एन. पर विशेष बल दिया गया है।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से इस दिशा में कई प्रयास करने की सिफारिश की गई है,यह नीति विद्यार्थियों से प्रत्यक्ष रूप से तभी जुड़ सकेगी जब आधारभूत शिक्षा जो कि लेखन,आधारभूत अंक गणित, इत्यादि में है विद्यार्थीयों प्राप्त हो। नीति में प्रत्येक छात्र को एफ.एल.एन. से जोड़ने को एक चुनौती के तौर पर लिया गया है इसके लिए केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय मिशन लॉन्च किया है जिसे नेशनल इनीशिएटिव फॉर प्रोफिशिएंसी इन रीडिंग की अंडरस्टैंडिंग एंड न्यूमैरेसी यानी निपुण भारत का नाम दिया गया है इस मिशन का मुख्य उद्देश्य बच्चों में बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान विकसित करना है। मिशन का दृष्टिकोण देश में एक व्यापक विश्व स्तरीय वातावरण तैयार करना है जिससे ग्रेड 3 के अंत तक बच्चे लिखने,पढ़ने और गणितीय समझ की क्षमता प्राप्त कर सके। मिशन के तहत 3 से 9 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों के पढ़ने लिखने और संख्या ज्ञान से जुड़ी आवश्यकताओं को पूर्ण किया जाएगा,संभावित कारणों को भी खोजा जाएगा जिनके कारण सीखने में बाधा आ रही है तब स्थानीय एवं देशव्यापी परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए नई रणनीतियां बनाई जाएगी।इसके अलावा इस उद्देश्य को भी साथ लेकर आगे बढ़ेंगे की प्रीस्कूलिंग एवं प्रारंभिक स्तर के मध्य मजबूत और सुचारू संपर्क स्थापित हो सके मिशन की गाइडलाइन के अनुसार मिशन के लक्षण और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शैक्षिक संस्थानों एवं हितग्राही की भूमिकाओं को परिभाषित किया जाएगा ताकि मिशन के लक्षणों को सुगमता से हासिल कर सके।

पढ़ने की समझ

पढ़ना केवल एकदम से प्राप्त हो जाने वाली या सीखी जाने वाली  सरल प्रक्रिया नहीं है यह धीरे-धीरे आत्मसात होने वाला कौशल है। जो व्यक्ति के ज्ञानार्जन में मुख्य भूमिका अदा कर सकती है। किसी छुपी हुई सामग्री या वस्तु को उच्चरित करने या भाषा की लिपि को पहचानना एवं अक्षरों ध्वनियों को जोड़कर शब्द या वाक्य रचना कर लेना मात्र ही पढ़ना नहीं हो सकता है। अपितु हम जिस भी लेख को पढ़ते हैं उसे पूर्ण रूप से समझ लेना अथवा अंगीकार कर लेना एक सार्थक पढ़ने को  परिभाषित कर सकता है। पढ़ना एक प्रकार का एक दृश्य प्रक्रिया ना होकर के कई कौशलों एवं क्रियो का बनाया गया संयोजन है। पढ़ने में मुख्य रूप से शामिल कौशल इसका सहज एवं स्वाभाविक रूप है तथा यह किसी के लिए जटिल एवं किसी के लिए रहस्यमई प्रकृति भी धारण कर सकती है। जो व्यक्ति दर व्यक्ति बदलता रहता है कई प्रकार से कौशलों का समीकरण एक सार्थक पढ़ने की प्रक्रिया को पूर्णता प्रदान करता है। पढ़ना केवल उच्चारण कर लेना ही नहीं उसे समझ पाना भी है। इस क्रिया में लिपि से परिचय,भाषा की वाक्य संरचना से परिचय एवं पूर्व ज्ञान पर निर्भर करता है।

पढ़ना क्या है

आमतौर पर किसी छुपी हुई शब्दावलियों को उच्चरित कर लेना पढ़ना मान लिया जाता है अक्षरों को और ध्वनियों को जोड़कर शब्द या फिर एक वाक्य बना लेना पढ़ने की श्रेणी में ले लिया जाता है परंतु क्या किसी लिपि को पहचाना या अपनी समझ अनुभव जानकारी भावना के आधार पर किसी को मान लेना या अपना संदर्भ दे देना पढ़ने की श्रेणी में आएगा। पढ़ना एक प्रकार का लिखित सामग्री से अर्थ निर्माण करने की प्रक्रिया है यह एक अत्यंत जटिल कौशल है जिसमें अनेक प्रकार की क्षमताओं के साथ निरंतर संवाद होता रहता है।रिचर्ड सी एंडरसन, अल्फ्रेड अचीवर, जुडिथ ए स्कॉट और ए.जी.विलकिंग्सनने अपनी पुस्तक “पढ़ना किसे कहते हैं ” मे पढ़ने की तुलना आर्केस्ट्रा की एक मधुर सिंफनी के साथ की है जिसमें कई प्रकार के वाद्य यंत्र एक साथ बजते हैं।

इस प्रकार पढ़ना भी एक साथ कई छोटे-छोटे कौशलों में बंटा होता है एवं किसी भी एक कौशल को अर्जित कर लेने से पढ़ना नहीं आ जाता।उदाहरण: यदि आप वर्णमाला जानते हैं और शब्दों को सही पहचान पाते हैं तो केवल इससे ही आप सही मायने में समझ नहीं बना सकते हैं पढ़ना तभी संभव होगा जब पढ़ने से जुड़े सारे कौशल एक दूसरे से संवाद करते रहे तथा एक साथ काम करें जैसे सिंफनी के वाद्य यंत्र में तानपुरा,सीटर,तबला एक साथ बजाते हैं किंतु इनमें से कोई एक भी बेसुरा हो जाए तो संगीत खराब हो जाएगा।

पढ़ना और संगीत में एक दूसरी समानता यह भी है कि दोनों में अभ्यास की आवश्यकता है जिस प्रकार संगीत सीखने में पूरी उम्र लग जाती है वैसे ही पढ़ना सीखने में भी पूरी उम्र लग जाती है तथा पढ़ने के कई प्रकार के अर्थ हो सकते हैं किसी कहानी कविता या संवाद का कोई क्या अर्थ ग्रहण करेगा यह पढ़ने वाले की पृष्ठभूमि, पढ़ने के उद्देश्य, व उसके संदर्भ से निर्धारित होता है जिसमें वह सामग्री पढ़ी जा रही है पढ़ने की एक प्रचलित पुरानी अवधारणा यह कहती है की पढ़ने की प्रक्रिया में शब्दों का उच्चारण अर्थ की ओर ले जाता है शब्दों को अर्थो से मिलकर उपवाक्य व वाक्य के अर्थ बनाए जाते हैं वाक्य के अर्थ को जोड़कर पूरे संवाद के अर्थ को समझा जाता है। इस अवधारणा के अंतर्गत बच्चों को सबसे पहले अक्षरों का ज्ञान उसकी पहचान कराई जाती है फिर शब्द और वाक्य को पहचान करने की कौशल सिखाई जाती है इस तरह ईट पर ईट रखकर वह अर्थ तक पहुंचते हैं परंतु अब तत्कालीन समय में शोध के माध्यम से यह सिद्ध किया गया है कि यह केवल एक आंशिक रूप से ठीक-ठाक प्रक्रिया है, क्योंकि अक्षरों का शब्दों की जानकारी के साथ पढ़ने के लिए यह भी आवश्यक है कि पाठ किसके साथ संबंधित है। इसकी समझ विकसित हो एक पठन सामग्री कोई अर्थ के बर्तन जैसा नहीं है, न होती है वास्तव में उसमें आंशिक रूप से कुछ अर्थ व जानकारी होती है जिसका प्रयोग पढ़ने वाले इसलिए करता है ताकि वह अपने पूर्व ज्ञान से जोड़कर उस सामग्री के वास्तविक अर्थ तक समझ स्थापित कर सके।

पढ़ना एक प्रकार की प्रक्रिया हैजिसमें पठन सामग्री से मिलने वाली जानकारी पढ़ने वाले के पूर्व ज्ञान में निरंतर एक संवाद स्थापित करती रहती है यह ठीक उसी प्रकार है जैसे

महाभारत की कथा में अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदन कि कला उसको पूर्व ज्ञान से प्राप्त था तथा जब संकट की स्थिति में उसे चक्रव्यूह को तोड़ना था तो उसने अपने पूर्व ज्ञान के साथ परिस्थितियों का संबंध स्थापित करते हुए चक्रव्यूह भेदन करने के लिए जाता है।

पढ़ने के पारंपरिक संप्रत्यय के आधार पर कुछ बच्चे बहुत ही उदासीन मन से श्रम करते हुए अक्षर से अक्षर को जोड़ जोड़कर पढ़ने का प्रयास करता है जैसे- म में ए की मात्रा मे, र में ई की मात्रा री मेरी इस प्रकार इस प्रकार इस विधि में बच्चे शब्दों के सही उच्चारण में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि वह अर्थ के विभिन्न पक्षों पर ध्यान नहीं देते हैं।

कुछ बच्चे तो पढ़ने के लिए अपने पूर्व ज्ञान पर इतना निर्भर होते हैं कि वह तस्वीरें शीर्षकों कल्पना व पठन सामग्री में छपी छुटपुट जानकारी के आधार पर ही कहानी बना देते हैं उदाहरण के लिए अभिमन्यु अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर चक्रव्यूह भेजने के लिए जाते हैं परंतु अंतिम दरवाजे को तोड़ने का ज्ञान उनको नहीं होता है इस प्रकार इस प्रकार वह हार का सामना करते हैं इसी तरह पूर्व ज्ञान के आधार पर ज्यादा निर्भर रहने वाले बच्चे वह क्षमता विकसित नहीं कर पाते हैं जिसमें वह शब्द वह वाक्य को पहचान सके एवं पूरे पाठ के अर्थ को समझ सकें।

पढ़ना एक रचनात्मक गतिविधि हैकोई भी पाठ सामग्री अपने में निहित संपूर्ण ज्ञान को नहीं बताती है तभी तो पाठक अपने पूर्व ज्ञान का उपयोग करके पाठ सामग्री में निहित संदेश की आपूर्तियों को पूरा करके उसमें दी गई जानकारी को समझने का प्रयास करता है अतः पाठक स्वयं अपने अर्थ का निर्माण करता है पूर्व ज्ञान में अंतर होने के कारण पाठकों में अर्थ निर्माण में काफी विविधता हो सकती है कुछ लोगों में इतना पूर्व ज्ञान नहीं होता है कि पाठ सामग्री को समझ सकें यह भी अपने पूर्व ज्ञान का उचित उपयोग नहीं कर पाते अक्सर बात समझने में इसलिए कठिनाई पैदा होती है क्योंकि विषय के बारे में लेखक व पाठक की अवधारणाएं अलग-अलग हो सकती है।

आर.एल.ट्रस्ट के अनुसार," पढ़ना एक युक्तिगत प्रक्रिया होनी चाहिए किसी भी पाठ सामग्री को पढ़ते समय वह किस दृष्टिकोण से पढ़नी चाहिए या पहले से विषय वस्तु से कितना परिचित है एवं पढ़ने का उद्देश्य क्या है यह पाठक को पता होना चाहिए कई शोधों से यह पता चलता है कि परिपक्व पाठक में कम से कम दो युक्तियां नहीं होती हैं वह कुशल पाठ को पाठ सामग्री से संबंधित अपने पूर्व ज्ञान का जायजा लगाते हैं,तथा समझने की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं वे उस युक्ति का प्रयोग नहीं करते हैं जिससे प्रक्रिया को असफल होने पर काम में लाई जाती हैं। कुशल पाठक जानते हैं कि पढ़ना अलग-अलग उद्देश्य से होता है उदाहरण के लिए वह समझते हैं कि जो लोग आनंद प्राप्ति के लिए पढ़ते हैं, उन्हें पढ़ते वक्त शायद गहरी समझ की आवश्यकता नहीं होती है परंतु परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए खूब समझकर पढ़ना होगा अतः बच्चों को पढ़ने के लिए उद्देश्य का होना अत्यंत आवश्यक है।

पढ़ने की प्रक्रिया में प्रेरणा का भी अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है पढ़ने की गहरी इच्छा पढ़ना सीखने की कुंजी की तरह कार्य करती है अधिकतर बच्चों को पढ़ना सीखने में कई साल लगेंगे लेकिन इस दौरान हमारी एक भाषा कोशिश होनी चाहिए कि बच्चों में यह उम्मीद बनी रहे कि वह कुशल पाठक बन सकेंगे पढ़ना अपने आप में एक आनंददायक बात है उन बच्चों के लिए जो निश्चित रूप से कुशल पाठक है काफी हद तक उन बच्चों के लिए भी जो औसत या औसत से नीचे श्रेणी में है कहते भी हैं जो बच्चे किताबों के मोह में खोए हुए हैं वह पढ़ने तथा पढ़ने को उद्देश्य को सीख  जाते हैं। बच्चों को पढ़ना सीखने की प्रक्रिया अक्सर बहुत प्रभावी होती है इस प्रक्रिया में कई हिस्से बहुत निराशाजनक होते हैं। पढ़ने के नाम पर दी गई अधिकतर गतिविधियां रुचिकर होते हैं इसलिए जब एक शोध में यह बात पता चलता है कि बच्चों को अपनी कक्षा से एक कक्षा आगे की किताबें पढ़ने के लिए कहा जाता है तो उन्हें बहुत मजा आ रहा होता है लेकिन पढ़ने के नाम पर स्कूल में होने वाली गतिविधियों में कोई रुचि नहीं होती है या हैरानी की बात नहीं है वे अध्यापक जो प्रेरणा के स्तर को उच्च बनाए रखते हैं उनके कक्षा में बच्चे गतिविधियों के साथ आरंभ से ही पढ़ने को समझने के साथ जारी रखते हैं। जिन अध्यापकों की कक्षा में अभिप्रेरित बच्चे होते हैं उनके

कक्षाओं में खूब काम होता है और स्नेह और विश्वास होता है अध्यापकों के द्वारा पढ़ाए गए बच्चे मूल्यांकन में औसत से कहीं अधिक अंक लाते हैं।

पढ़ना एक कौशल है जिसका निरंतर विकास होता रहता है। संगीत की तरह पढ़ना भी ऐसी कला है जिसमें एक बार महारत हासिल कर ली जाए उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अभी तो यह एक ऐसा कौशल है जिसमें निरंतर अभ्यास करने की आवश्यकता होती है यह प्रक्रिया इस वक्त शुरू हो जाती है जब कोई व्यक्ति विशेष किसी पढ़ने लिखने की संस्कृति से वाकिफ होता है। वह पहले पाठ सामग्री के समक्ष होता है। पढ़ना एक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। एक कुशल पाठक होने का मतलब आप निरंतर का अभ्यास करते रहते हैं और कौशल में निरंतर विकास व सुधार करने के लिए प्रेरित रहते हैं।

वर्ष 1950 के पहले तक अंग्रेजी की अधिकतर पढ़ाई वर्णमाला पद्धति से कराई जाती थी इस पद्धति में सबसे पहले बच्चे को अंग्रेजी वर्णमाला के 26 अक्षर सिखाए जाते थे ,यहां तक सीखने की प्रक्रिया ऊंचा बोलकर की जाती है। इसके बाद उन्हें चुप रहकर पढ़ना सिखाया जाता था जिसमें बच्चे पहले शब्दों को इस तरह बोलते हैं मानो अपने से बात कर रहे हो।इसके बाद भी उन्हें बिना आवाज निकाले चुप रहकर बोलते हैं अंत में बिना हाथ हिलाए पढ़ना सीखते हैं। हो सकता है कि अब भी उंगली नीचे रखकर शब्दों को पढ़ते हो इसलिए इस पद्धति की आखिरी चरण में उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया जाता था कि वह बिना शब्द के नीचे उंगली रख केवल आंख से देखकर ही पढ़े फिर बच्चों को कठिन पुस्तक पढ़ने को दी जाती थी जिससे उनका शब्द भंडार और व्याकरण का ज्ञान विकसित हो सके और उम्मीद की जाती थी की दसवीं आठवीं नौवीं कक्षा तक आते-आते हुए काम आने वाली अधिकतर सामग्री को पढ़ने योग्य हो जाए।

पढ़ना और समझना : एक पड़ताल

एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित पुस्तक पढ़ने की दहलीज पर के छपे हुए लेख के अनुसार किसी भी विषय वस्तु को जो की लिखा हुआ है उसके अर्थ को गढ़ लेना तथा

धारणाओं की गणना करना और साथ ही साथ विचारों को आपस में जोड़ पाना और अपनी स्मृति में संजोग कर रख लेना पढ़ने की समझ को दर्शाता है पढ़ना सिर्फ वर्णमाला की पहचान शब्द या वाक्य को बोल भर पाना नहीं बल्कि उसके आगे बहुत और भी है।यानी कि लिखे हुए के अर्थ को समझ कर अपना नजरिया बनाना या फिर अपनी निजी समझ को विकसित करना तथा शब्द के हर एक अंश को पढ़ पाना ही एकमात्र पढ़ना नहीं होगा पढ़ने का अर्थ लिखे हुए के साथ संवाद करना तथा अपने अनुभवों एवं सैद्धांतिक संरचना को सांचे में लिखे हुए सांचे में डालना पढ़ना है कि कई प्रक्रिया नहीं है इसमें शामिल अक्षरों की आकृतियां और उनसे जुड़ी हुई ध्वनियों,वाक्य विन्यास, शब्दों और वाक्य के अर्थ और साथ ही अनुमान लगाने का कौशल पढ़ने के दौरान प्राप्त करना तथा लिखी हुई जानकारी या संकेत का विश्लेषण कर पाना है।

पढ़ना और उसको समझ पाना इसके कौशल को विकसित करने के लिए हमें बच्चों को डिकोडिंग से दूर रखने की आवश्यकता है। डिकोडिंग का अर्थ किसी भी शब्द को टुकड़ों में बांट कर पढ़ना या उसकी पहचाना फिर उसके बाद उसको बोलना और पढ़ पाना कहलाती है विद्यालय शिक्षा में भाषा के संदर्भ में यह प्रक्रिया जो रिकॉर्डिंग कहलाती है। वह वर्णमाला उच्चारण या शब्द बोलने जैसे विधियों द्वारा होता है जो की बच्चो में रतंत प्रणाली द्वारा होती है जो कि बोझ युक्त एवम काफी कठिन प्रक्रिया होती हैं।

जब हम  किसी लेख को पढ़ने की कोशिश करते हैं तो उसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है की जिस भाषा में लिखा हुआ है उस भाषा से हमारा परिचय,जो की इस बात पर निर्भर करती है की सर्वप्रथम हम भाषा से परिचय स्थापित करें परिचय के अभाव में पढ़ना संभव नहीं हो पाएगा उसके बाद भाषा की वाक्य विन्यास की शैली कैसी है वह किस संरचना में बंधी होती है तथा उनके शब्दों का स्तर और ध्वनियों का स्तर और तथा वाक्य का विन्यास किस प्रकार का है इसकी जानकारी हासिल करनी होगी। इसके बाद पूर्व ज्ञान तथा पूर्व अनुभव के द्वारा हम किसी भाषा और विषय को समझ पाते हैं। लिखने पढ़ने सुनने के समय अर्थ निर्मित करते रहना पूर्व अनुभव या पूर्व ज्ञान की सहायता से ही हो पता है पूर्वानुभव या

पूर्व ज्ञान का अर्थ है व्यक्ति के सभी अनुभव से अपनी धारणाएं स्किमा के रूप में अपने मस्तिष्क में संचित करना। समझने के लिए हम एक डाकखाने का दृष्टांत ले सकते हैं। जिस प्रकार अलग-अलग जगह की चिट्ठियों के लिए खाने बने होते हैं विशेष जगह की चिट्ठी के लिए उन खानों के दराजों में चली जाती हैं। उसी प्रकार अनुभव भी स्कीमा के रूप में बुद्धि में चली जाती हैं। यह खाका आपस में जुड़कर के एक अवधारणा का निर्माण करते हैं जो कि हमारी समझ को विकसित करता है।

पढ़ना कैसे सिखाया जाए

पढ़ने के दो मुख्य पहलू हैं प्रेरणात्मक तथा सूचनात्मक, प्रेरणात्मक पहलुओं का संबंध सिखाने वाले के निश्चिंत्यता और सीखने के प्रति उसकी लगन को बढ़ावा देने से है सूचनात्मक पहलू का संबंध उसके ज्ञान और कौशल को विस्तार देने से हैं पढ़ने के संबंध में जो समीक्षा हम प्रस्तुत कर रहे हैं उनका संबंध पढ़ने के दूसरे पहलू से है जो चुनिंदा आधुनिक शोधों पर ऐतिहासिक और अंतरराष्ट्रीय परिपेक्ष को प्रस्तुत करती है इसमें स्कूल के प्रारंभिक वर्षों में बच्चों के स्वाभाविक प्रगति पर बल देने के साथ-साथ बच्चों को पढ़ना सीखने में आने वाली समस्याओं का भी जिक्र किया गया है। 19वीं सदी से लगभग से लगभग 3000 हजार वर्ष पूर्व से वर्णमाला पद्धति से पढ़ना सीखने की मूलभूत पद्धति रही इस पद्धति में बच्चे सर्वप्रथम वर्णमाला के अलग-अलग अक्षरों की पहचान करते थे इसके बाद दो अक्षर वाले शब्दांश आदि सीखने थे इनमें से इन अक्षरों का एक-एक करके मौखिक रूप से नाम देना और फिर शब्दांश के रूप में उच्चारण करना सीखा जाता था इसी प्रक्रिया के सहारे बच्चे पहले छोटे शब्द फिर छोटे छोटे गद्य पढ़ने लग जाता था जो उसे समय की शैक्षिक उद्देश्यों को अपने महत्व के आधार पर चुनते थे 19वीं सदी के बाद में वर्णमाला पद्धति का महत्व कम होने लगा तथा जहां साक्षरता बहुत कम थी वहां सदी के अंतिम दशक में शिक्षण पद्धति पर एक नई पुस्तक प्रकाशित की गई।

फर्नी 1995 के अनुसार, "इस पुस्तक इस पुस्तक में वर्णमाला पद्धति के तीन विकल्प प्रस्तावित किए गए पहले स्वर्णिम पद्धति जिसमें बच्चों को प्रत्येक अक्षर के सबसे सामान्य ध्वनि सिखाई जाती थी उदाहरण अर्थ बन का उच्चारण यदि बच्चों को कोई मुद्रित शब्द मालूम नहीं होता था तो उन्हें सिखाया जाता था कि पहले वर्ण की ध्वनि को सिलसिले बार उच्चारण करें और उसके बाद अनुमान के आधार पर ध्वनियों को जोड़कर ऐसा शब्द बनाएं जो पहचान में आ सके दूसरा विकल्प था लुक और से देखो और कहो इस पद्धति में बच्चों को सिखाया जाता था कि पूरे एक शब्द को एक इकाई के रूप में देखें तथा पढ़ें और इसके अलग-अलग अक्षरों पर ध्यान ना दें फनी ने जिस तीसरे विकल्प को शिक्षकों द्वारा अपनाया जाने पर बोल दिया था वह तीन पद्धतियों के सर्वोत्तम बिंदुओं को जोड़कर बना तरीका था इस वैकल्पिक पद्धति से पहले वर्ण सिखाए जाते थे फिर देखो और बोलो पद्धति को अपनाया जाता था इसके बाद सैनिक पद्धति को अपनाते हुए जहां जरूरत होती थी वर्णों की ध्वनियों का ज्ञान कराया जाता था 19वीं सदी के बाद से पढ़ना सीखने के प्रति झुकाव कभी विश्लेषणआत्मक स्वर्णिम पद्धति  पढ़ती तो कभी लचीले देखो और कहो पद्धति के बीच रहा।

19वीं सदी  की शुरुआत से लेकर लगभग 3 दशकों तक अमेरिका की वाक्य पद्धति की तुलना में विश्व भर में कहानी कथन पद्धति को ज्यादा लोकप्रियता मिले, बच्चों के पढ़ना सीखने की शुरुआत प्रमाणिक साहित्य की कहानी सुनने से हुआ करती थी जब तक बच्चा कहानी के मौखिक रूप से परिचित नहीं हो जाता था उसे लिखित सामग्री पढ़ने की कोशिश नहीं करवाई जाती थी इसमें 1960 के दशकों में पढ़ना सीखने के लिए भाषा अनुभव प्रणाली का कई अंग्रेजी भाषी देशों में प्रभाव बना रहा इस प्रणाली में पठन को बच्चों द्वारा पहले से हासिल किए गए भाषा कौशलों के विस्तार के रूप में देखा गया साथ ही इस प्रणाली में अर्थपूर्ण संप्रेषण के रूप में पठन के उद्देश्य पर विशेष बल दिया गया आज की समग्र भाषा पद्धति अंशिता इस  भाषा अनुभव का ही परिणाम है इस समग्र भाषा प्रणाली में अर्थपूर्ण संप्रेषण और साक्षरता संबंधी उन गतिविधियों की संपूर्णता और अखंडता पर अधिक बल दिया जाता है जिसमें बच्चे सक्रिय रूप से भागीदार रहते हैं पढ़ना सीखने का आरंभ करने के लिए बच्चों को प्रमाणित साहित्य पढ़ने की सलाह दी जानी चाहिए इस पद्धति में इस पद्धति

में साहित्य पर इतना बल दिया गया कि इस समग्र साहित्य पद्धति कहना ज्यादा बेहतर बन गया समग्र भाषा कार्यक्रम की तुलना बसल रीडर कार्यक्रम से की गई है बसल डिटेल कार्यक्रम एक प्रकार का विश्लेषणात्मक शिक्षण पद्धति है जो स्वर्णिम और संदर्भ सहित शब्दों पर आधारित है इस संबंध में रोचक निष्कर्ष सामने यह आया कि इस संदर्भ में किए गए सघन शोधनों में इनमें से किसी भी शिक्षण पद्धति के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत नहीं किए गए इसके परिणाम का तुलना में मुद्दे जैसे पाठ को द्वारा पाठ का स्वयं मूल्यांकन करना और साहित्य के प्रति कला के रूप में प्रतिक्रिया करना आदि शामिल थे।

पढ़ने की शुरुआत के संबंध में एक प्रमुख मुद्दा यह है कि क्या बच्चे अपने स्कूल के प्रारंभिक वर्षों में इतने सक्षम होते हैं कि वह पठन अनुभवों के लिए किसी मानदंड को व्यवहार में ला सके जांच के ऐसे थीम बना सके जिससे साहित्यिक कृति पर उनकी राय को पोस्ट करने में सहायक हो क्या वे थीम इस योग्य होते हैं कि अपने पठन अनुभवों को एक स्पष्ट उद्देश्य का रूप दे सकें और इसमें अलग-अलग परिपेक्ष को जोड़ सकें, पठन अनुभव पर बच्चों के विचार संबंधित शोध साहित्य की समीक्षा की उन्होंने यह समीक्षा विषय वस्तु लेखक और अन्य पाठकों के दृष्टिकोण से की शोध समीक्षा के परिणाम यह इंगित करते हैं कि 10 वर्ष की उम्र के बच्चों को साहित्यिक मूल्यांकन करने की सूर्य शुरुआत कराई जा सकती है इस उम्र में इस प्रकार का क्षण उनके लिए लाभदायक होगा जो साहित्य की कला के रूप में प्रति उनकी आलोचनात्मक प्रतिक्रिया के विकास में सहायक हो सके।

पढ़ने की प्रमुख पद्धतियां

शब्द पहचान विधि: शब्दों की पहचान के लिए समग्र भाषा प्रणाली के पक्षधर आमतौर पर एक सलाह देते हैं कि शिक्षक बच्चों को इस बात के लिए प्रेरित करें कि वह पढ़े गए पाठ के संदर्भ में अर्थ का अनुमान लगाए शोधों से काफी हद तक सामने आया है कि वस्तुत इसका उल्टा होता है और परिचित शब्दों की पहचान करने में पार्थो088 द्वारा संदर्भ को कम महत्व दिया जाता है।जॉनसन कन्हौली और थॉमसन ने एक शोध-में यह पाया कि 5 से 6 साल के बच्चे जिन्हें स्वर्णिम पद्धति और कहानी सुना कर दोनों प्रणालियों में पढ़ना

सिखाया गया था वह समग्र भाषा कार्यक्रम वाले बच्चों की तुलना में पूरी तरह अपरिचित चीजों नियमित शब्दों को ज्यादा अच्छी तरह से पढ़ पा रहे थे परंतु अनियमित वर्ण ध्वनि व्यवहार वाले सामान्य शब्दों को कम कुशलता से पढ़ पाए सैनिक पद्धति के माध्यम से पढ़ाया गए बच्चे समझ के साथ पढ़ने के लिहाज से फायदे में रहे जिसका कारण यह हो सकता है कि पढ़ने की धीमी गति की वजह से भी शब्द की बारीकियां पर अधिक ध्यान दे पा रहे होंगे। वर्णमाला पद्धति पढ़ने की शुरुआत के लिए जर्मनी में इकल सिमर ने सुनामी शताब्दी में एक शिक्षकों से आग्रह किया कि वह यह देखें कि इंसान ने सबसे पहले पढ़ना कैसे सीखा होगा और यह भी देखें कि अक्षर क्या देने से पहले बच्चों को यह सीखने की कैसे उच्चारण शब्दों को दिमाग में स्वर्णिम इकाइयों में विभाजित करके देखा जा सकता है पिछली सदी के मध्य में रूस के में उसे दिन उसकी ने हिस्टोरिक मेथड की अनुशंसा की यह तरीका इस बात पर आधारित था कि वर्ण क्रम व्यवस्था का तथाकथित आविष्कार कैसे हुआ 1992 की समीक्षा के अनुसार यह आविष्कार उसे अमूर्त ध्वनि यंस की खोज पर निर्भर करता है जो किसी भाषा के बोलचाल के शब्द का हिस्सा होते हैं अतः बोले जाने वाले शब्द के इस पहलू को सिखाना बच्चों के पढ़ना सीखने का पहला कदम होता है उदाहरण के लिए बच्चों को स्वर्णिम की पहचान एक विशेष आरंभिक ध्वनि पर आधारित मौखिक शब्दों को चुनकर करवाई जाए जैसे के से शुरू होने वाले कई मौखिक शब्दों का चयन करें और फिर प्रस्तुत मौखिक शब्दों के पहले स्वर्णिम और आखिरी स्वर्णिम की पहचान करें यह हिस्टोरिक मेथड व्यवहार में संतोषजनक रूप से लागू नहीं हो पाया हालांकि रूस ने 1960 और 70 के दशक में अल्कोहल इन द्वारा प्रतिपादित पठन अधिवेशन यानी पढ़ने के संबंध हिदायतें देने के कुछ ऐसे नए तरीके विकसित किए हैं। सामान्य प्रगति के लिए यदि पढ़ना सीखने की शुरुआत में इस सिद्धांत को ज्ञान आवश्यक माना जाता है कि शिक्षक को यह सुनिश्चित करना होगा की स्वर्णिम की पहचान बच्चों की शिक्षण की शुरुआत में करवाया जाए ऐसे ज्ञान के लिए क्या तब तक इंतजार किया जाए जब तक बच्चा अपने आप ऐसा करना नहीं सीख जाता फिर शिक्षण में स्पष्ट तौर पर इसका अभ्यास करवाया जाए ऑस्ट्रिलेया के बायर्न&फिल्डिंग बंसारले ने बताया की स्वर्णिम स्वरूपों का ज्ञान स्कूली शिक्षक शुरू होने से 4 साल की उम्र में शुरू करना चाहिए। यह 12 हफ्ते तक करवाया जा सकता है हालांकि दो-तीन वर्षों की

स्कूली शिक्षा के बाद प्रशिक्षण में पाया गया कि शब्दों को अक्षरों की ध्वनि से जोड़कर पढ़ने वाले इस समूह का प्रदर्शन दूसरे नियंत्रित समूह के मुकाबले बेहतर नहीं था ब्लैक मैन ने यह सिद्ध किया कि स्वर्णिम पहचान के साथ अक्षरों की ध्वनि का प्रशिक्षण 7 हफ्तों तक दिया गया तो 5 वर्ष के बच्चों को इससे लाभ होगा इस अध्ययन को अमेरिका के किंडरगार्डन कार्यक्रम में शामिल किया गया था जिन्हें व्यवस्थित पठान निर्देश नहीं दिए गए थे जिसके आश्चर्यजनक लाभ मिले समझकर पढ़ना पद्धति बच्चों के लिए सबसे ज्यादा आवश्यक कौशल यह है कि वह जो भी पढ़ें उसका समझ स्थापित कर सकें इसका भी पठन के साथ कोई सीधा संबंध नहीं देखा गया है परंतु यहां यह मुद्दा यह है कि सो स्पष्ट शिक्षक द्वारा मुद्रित पाठ को समझने के कौशल को बढ़ावा दिया जा सकता है अथवा नहीं कई देशों में या बहस का मुद्दा रहा है जैसे कि जापान में समझ के साथ पढ़ने की नई प्रणाली को अधिक से स्पष्ट व विश्लेषण आत्मक बोल दिया गया है जबकि कुछ वैश्विक रूप से व्यापक रही अमेरिका में समझ के साथ पढ़ना सीखने के उसे नमूने में अधिक रुचि ली जाती रही है जिसमें बच्चों को नई रणनीतियों से परिचित करवाया जाता है और यह बताया जा सकता है कि उन वीडियो का कब और कैसे इस्तेमाल किया जाए।

पढ़ने के प्रचलित तरीके

यह एक आम मान्यता है की पढ़ना अक्षरों शब्दों वर्तनी संरचना और भाषा की बड़ी इकाइयों का कुछ विस्तृत अनुक्रमिक ज्ञान और पहचान है पढ़ने की स्वनिक (phonic) आधारित आधारित पद्धति में अक्सर विशेष की पहचान करना प्रमुख होता है शब्द केंद्रित पद्धतियों में शब्द के पहचान पर ध्यान दिया जाता है तथा परिचित शब्द ऐसे देखे समझे शब्द हैं जिन्हें किसी भी संदर्भ में पहचाना जा सकता है इसका मतलब यह नहीं कि जिन लोगों के पठान के क्षेत्र में घंटा से कार्य किया है वह इस बात से अवगत नहीं है कि पढ़ने वास्तविक व अनुक्रमिक पहचान से कहीं अधिक है लेकिन पढ़ने को लेकर यह सामान्य धारणा उपयुक्त ना होते हुए भी पढ़ने की समझ को लेकर हो रहे विचार विमर्श को लगातार प्रभावित करती रही है। स्पआर्स के अनुसार, "शाब्दिक रूप से प्रस्तुत करते हुए अपने सरलतम रूप में पढ़ने को

शब्द प्रत्यक्षण की श्रृंखला के रूप में समझाया जा सकता है"। लिपिनकाट के अनुसार, "बच्चा बच्चे अक्षर प्र अक्षर तरीके को अपनाकर आरंभ से ही शब्द को इस तरह देखना सीख जाता है जिस प्रकार एक कुशल पाठक एक शब्द को सभी अक्षरों के साथ संपूर्णता में पड़ता है।"

कैनाथ गुडमैन कहते हैं कि, "पढ़ना एक चयनात्मक प्रक्रिया है जिसमें पाठक की अपेक्षाओं के आधार पर प्रत्यक्ष सामग्री से चुने हुए थोड़े बहुत उपलब्ध भाषा संकेत शामिल होते हैं।" पढ़ने की प्रक्रिया में जैसे-जैसे यह आंशिक जानकारी बढ़ती जाती है ।पढ़ने में ऐसे अस्थाई निर्णय भी लिए जाते हैं। जिन्हें प्रमाणित भी करते हैं नकारते भी हैं और परिवर्तित भी करते हैं। बड़े सरल ढंग से कहें तो पठान एक मनोभाषिक अनुमान लगाने का खेल है। जिसके विचार और भाषा की अंतर क्रिया शामिल होती है। कुशल पठन सहित समझ और सही अवयवों की पहचान के परिणाम स्वरुप नहीं होता बल्कि यह एक कुशल है जिसके अंतर्गत पाठक अपने उपयुक्त संकेत को चुनता है। और उसके आधार पर पहले ही बार में सटीक अनुमान लगाता है निश्चय ही पढ़ते समय जो देखा नहीं किया उसका पूर्वानुमान लगाने की योग्यता पढ़ने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है। ठीक उसी तरह जैसे जो सुना नहीं गया उसका पूर्वानुमान लगानेकी योग्यता सुनने में महत्वपूर्ण है।

चोमस्की का कहना है का कहना है की भाषा में इनकोडिंग एक सुनिश्चित स्तर तक पहुंच जाती है इसके परिणाम स्वरूप जो संकेत मिलता है वह अपने आप में पूरा होता है लेकिन डिकोडिंग के निर्देशन में की प्रक्रिया का लक्ष्य संदेश के लगभग समेत पहुंचना होता है इसके फल स्वरुप मिलने वाला कोई भी कोडेड या मिलता जुलता संकेत एक प्रकार का प्रतिपादन होता है अर्थात पढ़ते समय पाठक एक समय पर दो कार्य करने होते हैं, वह पाठ के छपे हुए संस्करण के समतुल्य मौखिक चीजों को पड़ता है जिसे पढ़ने के संदर्भ में संकेत कहते हैं और साथ ही वह कुछ भी पढ़ रहा है उसके अर्थ का पुनर्निर्माण भी करें मोटे तौर पर चांस की के निर्वाचन मॉडल में मिलन की प्रक्रिया को रिकॉर्डिंग संक्रिया कहा जा सकता है। पाठक कोडेड ग्राफ निवेश को एक स्वनिमिक या मौखिक आउटपुट के रूप में रिकॉर्ड करता है। इस

प्रक्रिया में प्राय अर्थ की सीमा तक शामिल नहीं होता। यह रिकॉर्डिंग किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा भी सीखी जा सकती है जो उसे भाषा विशेष को बिल्कुल भी नहीं जानता हो उदाहरण के तौर पर एक बार किशोर या समझने की क्षमता के बगैर कि वह क्या उच्चरित कर रहा है हिब्रू लिपि का मौखिक उच्चारण तो कर सकता है लेकिन हेबर लिपि को सीखने के लिए उत्साहित नहीं हो सकता लेकिन जब पाठक लेखक की रचना के अर्थ में पुनर्निर्माण के लिए अर्थ संकट विश्लेषण में जुड़ जाता है तब वह रिकॉर्ड कर रहा होता है। गुडमैन से अपने मॉडल में बताए गए कुछ विशेष बातें के अनुसार, 1. पाठक प्रिंट को बाय से दाएं बाएं से दाएं सरसरी नजर दौड़ता हुआ पंक्ति दर पंक्ति नीचे की ओर आता है वह अपनी आंखें एक स्थान पर केंद्रित करता है कुछ प्रिंट तो आंखों के सिद्ध में केंद्रित होते हैं तथा कुछ एक दायरे में होंगे जो शायद उसकी अवधारणा आत्मक धैर्य से थोड़ा साखरा हो सकता है। अपचयन की प्रक्रिया आरंभ होती है। वह अपने पहले के चयन भाषा संबंधी अपने ज्ञान अपने संज्ञानात्मक शैलियों और अपनी सीखने की युक्त की बद्ताओं से मार्गदर्शन लेटा हुआ ग्राफिक संकेत का चयन करता है। वह इन संकेतों और अनुमानित संकेत का प्रयोग करते हुए एक प्रत्यक्ष बोधात्मक चित्र बनाता है।

कुछ हद तक यह चित्र जो कुछ उसने देखा या देखने की आशा कर रहा है अब वह संबंधित वाक्य विन्यास अर्थ संकेत स्वर्णिम विज्ञान संबंधी संकेतों के लिए अपनी विश स्मृति को टटोलत है। यह उसे कुछ और ग्राफिक संकेत का चयन करने और बोधात्मक चित्रों को पुनर्निमित करने की ओर ले जाता है। इस बिंदु पर वहग्राफिक संकेतों के सामंजस्थ रखने वाले अनुमान या अस्थाई चयन को कर पता है अर्थगत विश्लेषण जहां तक संभव हो आशिक रिकॉर्डिंग में मदद करता है, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता है या अर्थ उसकी अल्पकालिक स्मृति से जुड़ता चला जाता है यदि कोई अनुमान लगाना संभव नहीं है तो फिर वह अपनी स्मृति में इकट्ठे हुए शब्दों को परख कर फिर दोबारा प्रयास करेगा यदि तब भी कोई अनुमान लगाना संभव नहीं है तो अधिक ग्राफिक संकेत की तलाश में वह पाठ सामग्री पर एक बार फिर नजर डालता है यदि वह रिकॉर्ड करने लायक चयन कर सकता है तो उसे अपने पूर्व चरणों और डिकोडिंग द्वारा विकसित किए जाने संदर्भ में अर्थ का तो व्याकरण एक स्वीकृति के लिए

जांचता है यदि अस्थाई विकल्प अर्थ विज्ञान या वाक्य विज्ञान के नियमों के अनुसार स्वीकार नहीं होते हैं तो वह पीछे लौटकर पंक्ति पर बैन से दाएं फिर से सर्जरी नजर डालता है और पूरे पृष्ठ पर अर्थगत या वाक्य विन्यास की संगति के बिंदु को तलाशता है जब ऐसा कोई बिंदु मिल जाता है तो वह उसे बिंदु से पढ़ना आरंभ करता है यदि संगति पहचानी नहीं जा सकी तो वह किसी ऐसे संकेत को तलाश में आगे पड़ता है जो उसे संगति के समाधान को संभव बना सके इस प्रकार यह प्रक्रिया चलती रहती है।

## शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में हम अवलोकन प्रविधि के दौरान कक्षा में छात्रों का शिक्षक तथा क्रियाकलापों का अवलोकन करने का प्रयास करेंगे जिसके द्वारा हम यह देख सकेंगे की कक्षा में बच्चों को किस प्रकार पढ़ाया जा रहा है तथा बच्चे किस प्रकार अपने पढ़ने के समझ को विकसित कर पा रहे हैं। तथा साक्षात्कार की प्रविधि में हम विद्यालय के कुछ भाषा के शिक्षकों का साक्षात्कार करेंगे जो की असंचरित  और संचारित साक्षात्कार के द्वारा होगा इसमें हम शिक्षकों से छात्रों को उनके द्वारा पढ़ने की तौर तरीकों का अध्ययन करने का प्रयास कर रहे हैं।

## विषयगत विश्लेषण

शोधकर्ता ने उपयुक्त अवलोकन का गहन अध्ययन किया है। अवलोकन के दौरान बनाए गए गतिविधि एवं संकल्पनात्मक कार्य से प्राप्त अंतर्दृष्टि के आधार पर शोधकर्ता ने बुनियादी पढ़ने से संबंधित अपने अवलोकनों में से इन थीम को छांटा है। यह थीम मूल रूप से बुनियादी पठन ज्ञान पर आधारित है और यह आंकड़ों के लिए विश्लेषण का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करती हैं।  इस हिस्से में पढ़ने के समझ के संबंध को कक्षा प्रक्रिया के दौरान समझने का प्रयास किया गया है। विद्यालय में कक्षा एक से तीन तक के बच्चों को  पढ़ने को बताने का प्रयास किया गया है। कक्षा अवलोकन के समय हमने बच्चों को पढ़ने की समझ

को कैसे विकसित करें एवम कैसे सार्थक पाठक बने इसे परखने का प्रयास किया है। गतिविधि को निम्नलिखित थीम में  बांट लिया गया:-

डिकोडिंग:

शिक्षाविद् शारदा कुमारी कहती हैं की शिक्षण व्यवस्था में बच्चों को सही तरीके से पढ़ना सीखने या पढ़ने की क्षमता को विकसित करने के लिए यह बहुत जरूरी है कि बच्चों को डिकोडिंग से दूर रखा जाए डेकोडींग का आशय यह होता है कि बच्चों को टुकड़ों में बताकर पहचानना फिर उसे बोल पाना या पढ़ पाना भाषा की कक्षा में डिकोडिंग पर आधारित वीडियो जैसे वर्णमाला उच्चारण या शब्द बोलना कुछ प्रमुख विधियां आजकल बहुत लोकप्रिय हैं। प्रस्तुत शोध को करते वक्त शोधार्थी ने पाया कि प्रथम विद्यालय में शिक्षिका बच्चों को वर्णमाला को रटवाने के लिए प्रतिदिन कक्षा में दोहराने के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं वह कई दिनों तक रट्टा लगवा करके बच्चों को वर्णमाला याद करवाने का प्रयास कर रहे हैं वर्णमाला को रटवा लेने के बाद वह उसके उच्चारण पर और शब्द बोलने पर ध्यान दे रही हैं शिक्षिका का सारा ध्यान बच्चा कितनी सही ढंग से पढ़ रहा है इस पर है।

व्यवहारगत अधिगम

शोधार्थी ने शोध करते समय यह पाया की एक विद्यालय में शिक्षिका महोदय बच्चों के भाषण कौशल को बढ़ाने के लिए अभ्यास पर ज्यादा बल दे रही हैं वह वाक्य को टुकड़ों में बताकर पढ़ने की प्रयास कर रही हैं। शिक्षिका ने साक्षात्कार के समय यह बताया कि बच्चों को प्रतिदिन अभ्यास करवाने से बच्चों की आदत का निर्माण हो जाता है जिससे वह किताबों को आसानी से पढ़ पाते हैं शिक्षिका ने यह भी बताया कि वह प्रतिदिन बच्चों के पूर्व ज्ञान को दोहराने का प्रयास भी करती हैं वह आज जो कक्षा लेते हैं दूसरे दिन आज पढ़ाई गई पठन

सामग्रियों को बच्चों को याद करने के लिए उसको दोहराती हैं। शिक्षाविद् शोभा सिन्हा कहती हैं की, "पढ़ने की समझ विकसित करने में एक बहुत बड़ी समस्या हमारा व्यवहारवादी दृष्टिकोण भी है व्यवहारवादी दृष्टिकोण दक्षता और अभ्यास पर ज्यादा जोर देता है इसमें भाषा को अभ्यास के उद्देश्य से टुकड़ों में बांट कर अर्थ निर्माण और बिना मतलब की इकाइयों में बदल दिया जाता है और यह किसी चीज को उसके समूचेपन से जानने का सही तरीका नहीं है इससे मात्र अर्थ हीनता ही आती है और कुछ नहीं।"

बॉटम अप पद्धति

शोधार्थी ने शोध करते समय पाया की विद्यालय में हिंदी विषय का अध्ययन कराने के लिए शिक्षिका ने जिस विधि प्रयोग किया है उसमें वह सबसे पहले बच्चों को वर्णमाला सिखाने का प्रयास करती हैं, उसके बाद वह बच्चों को वर्णो से शब्द बनाना, फिर शब्दों से वाक्य बनाना और वाक्य से लेख बनाना सिखाती है। शिक्षिका बताती हैं कि यह एक सरल विधि है जिससे बच्चों में पढ़ने की समझ विकसित होती है। बच्चे आसानी से चीजों को समझ जाते हैं तथा जब बच्चे वर्णमाला से लेकर आगे की तरफ बढ़ते हैं तो वह अच्छे से पुस्तकों को पढ़ सकते हैं। शिक्षाविद शोभा सिंह जी ने इस प्रकार की पद्धति को 'बॉटम-अप' कहा है। वे कहती हैं कि "यह पद्धति नीचे से ऊपर जाने वाली पद्धति है और इसको प्रस्तुतीकरण करने में शुरुआत में काफी परेशानी पैदा होती है क्योंकि वह कुल मिलाकर एक अमूर्त और अर्थ विहीन होते हैं। बच्चे को पढ़ाना एक सरलतम तरीका नहीं हो सकता है इसके अलावा वह किसी अन्य पाठ-सामग्री को बॉटम-अप तरीके से समझाने या उसको प्रस्तुत करने का विरोध करती हैं। उनका मानना हैं की अक्षरों पर जरूरत से ज्यादा जोर देना पढ़ने के प्रति बच्चे का ध्यान विचलित करता है।"

अर्थ हीन पाठ्यसमग्री

शोधार्थी ने शोध करते वक्त पाया कि कक्षा 2 में शिक्षिका महोदय एक बच्ची से एक कविता का पाठ करवाती हैं तथा सभी बच्चे उसे दोहराते हैं वह कविता इस प्रकार थी_

अ से अनार ,आ से आम;
अभी करो सब अपना काम
इ से इमली, ई से ईख;
अच्छी-अच्छी बातें सीख
उ से उल्लू, उ से ऊन;
दादी मेरा स्वेटर बुन
ऐ  से एडी, ऐ से ऐनक;
हम सब हैं देश के सेवक
ओ से ओला,औ से औरत;
मन लगाकर करो तुम मेहनत

शिक्षाविद् शोभा सिंह जी कहती हैं कि हमारे शिक्षण व्यवस्था में अधिकांश पाठ सामग्रियां अर्थ विहीन है जिनका वास्तव में सक्रिय तौर पर बच्चों को अर्थ पर गौर न करना सिखाया जाता है अगर वह अर्थ समझने के लिए पढ़ते हैं तो यह अनुभव बेतुका  सिद्ध होता है क्योंकि मूल पाठ से सुसंगत या समझने लायक कुछ भी बच्चों के वातावरण से नहीं होता है बच्चों को इन पाठों में आनंद प्राप्त करने की उम्मीद करना मुश्किल है, तथा सब कुछ को दरकिनार कर सकार अथवा ध्वनियों के प्रति अंध मोहग्रस्तता के साथ पाठ को विषय पर केंद्रित नहीं रहने देती और कभी-कभी तो उन्हें साफ तौर पर अटपटा असंगत और बेमानी बना देती है।

प्रेरणात्मक शिक्षण

शोधार्थी ने शोध करते हुए यह पाया कि एक विद्यालय में शिक्षिका महोदया बच्चों को केवल उनकी अर्थात पाठ्यक्रम की पुस्तक को पढ़ने तथा पुस्तक में दिए गए अभ्यास प्रश्न

को हल करने को ही अपना दायित्व समझती हैं। साक्षात्कार में उन्होंने बताया कि हमारा काम पाठ्यक्रम को समय से खत्म करना है। जिसके लिए हमे साल के 9 से 10 महीने का ही समय मिलता है अतः हमको इस समय में अपना पाठ्यक्रम खत्म करना होता है नहीं तो अभिभावक इस बात की नाराजगी जताते हैं कि उनके बच्चों का पाठ्यक्रम अभी पूरा नहीं हुआ। शिक्षाविद जी ब्रायन थॉमसन कहते हैं की" शिक्षण के दो मुख्य पहलु होतें हैं। एक प्रेरणात्मक तथा दूसरा सूचनात्मक। प्रेरणात्मक पहलुओं का संबंध सिखाने वाले की निश्चिंताता और सीखाने के प्रति उसकी लगन को बढ़ावा देने से है। सूचनात्मक पहलुओं का संबंध उसके ज्ञान और कौशल को विस्तार देने से है। परंतु इन विद्यालयों में शोधार्थी ने पाया की शिक्षिका महोदया केवल बच्चों को सूचनात्मक पहलू को वरीयता दे रही हैं उनके प्रेरणात्मक पहलू को वरीयता नहीं दे रही हैं क्योंकि वह केवल बच्चों को अभ्यास प्रश्न के लिए तैयार कर रहे हैं तथा उनका सारा ध्यान बच्चों के पाठ्यक्रम को पूरे करने पर है। छात्रों को एक सार्थक व स्थाई पाठक बनाने की तरफ नहीं है।

पुस्तकालय की आदत

शोधार्थी ने शोध में पाया कि विद्यालयों में प्रारंभिक कक्षा में पढ़ने वाले छात्रों को पुस्तकालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है साक्षात्कार के दौरान एक विद्यालय ने यह कहा कि हम कक्षा एक तथा दो के बच्चों को पुस्तकालय में ले जाते हैं उनको बैठाते हैं किंतु किताबें उनको हम डिजिटल माध्यम में टीवी पर दिखाने का काम करते हैं इस प्रकार बच्चों में किताबों की समझ उत्पन्न होती है, शिक्षिका बताती हैं कि वह बच्चों को पुस्तक नहीं देते क्योंकि उसे फटने का या खो जाने का डर होता है। इसी प्रकार एक अन्य विद्यालय में भी प्रधानाचार्य महोदय ने बताया कि हम छोटे बच्चों को जो अभी कक्षा 10 से नीचे हैं उनको पुस्तकों तक की पहुंच मुहैया नहीं करा सकते हैं क्योंकि छोटे बच्चे किताबों को फाड़ देते हैं तथा चोरी होने का डर है इसलिए हम केवल बड़े बच्चों को ही पुस्तक देते हैं छोटे बच्चों को पुस्तक नहीं देते हैं। प्रख्यात शिक्षाविद् लता पांडे कहते हैं की,"बच्चों में पढ़ने के प्रति रुचि जगाने में विद्यालय के पुस्तकालय बड़ी भूमिका निभा सकते हैं हमारे प्राथमिक विद्यालयों में

यदि पुस्तकालय की संख्या बढ़ाई जाए तथा उनमें पुस्तकालय के अंदर बच्चों के पाठ्यक्रम से इतर आनंददायक किताबें रखे जाएं तो बच्चे खूब मन लगाकर के पढ़ेंगे बच्चे नई चीज को पढ़ना उनके अंदर उमंग को भर देता है छपि या लिखी गई सामग्री को पढ़ने की कोशिश करना बच्चों के लिए एक खेल के तरह लगता है, तथा वो बतातीं हैं की पढ़ने के लिए एक समृद्ध वातावरण का प्रभाव इतना सशक्त होता है कि वह विशेष आवश्यकता वाले बच्चों पर भी इसका चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है इसकी शारीरिक तथा मानसिक बड़ा खेल कूद व अन्य प्रकार की क्रियो से वंचित रखती हैं ऐसे में पढ़ने का समृद्ध वातावरण जिसमें मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ होने का एहसास बनाए रखना है।"

समृद्ध वातावरण

शोधार्थी ने शोध में पाया कि विद्यालयों की दीवारों पर अधिकतर महापुरुषों के चित्र तथा उनके विचार लिखे हुए हैं, तथा अधिकतर विद्यालयों में दीवारों पर कार्टून के आकर्षक चित्रों से सजाया गया है तथा कुछ विद्यालयों में किसी धर्म विशेष के पूजनीय लोगों के चित्रों से सजाया गया है या किसी संस्था तथा उनके प्रणेताओं के चित्रों को अधिकता दी गई है। शिक्षाविद् लता पांडे कहती हैं कि "बच्चों के पढ़ने के प्रति रुचि विद्यालय के वातावरण एक बड़ी भूमिका निभा सकते हैं बच्चों को विद्यालय में रोचक सामग्री मुहैया करवा करके उनको पढ़ने के लिए तत्पर किया जा सकता है बच्चों के चारों ओर बिखरा भाषाई संसार ही उनके भाषा सीखने की बड़ी भूमिका अदा कर सकता है क्योंकि पाठ पुस्तक के पन्नों में छपी सामग्री को पढ़ना ही पढ़ना नहीं है अपने चारों ओर बिखरी लिखित तथा छुपी हुई सामग्रियों को पढ़ पाना तथा उसमें से अर्थ निकालना ही सही मायने में पढ़ना है"

पुस्तकीय ज्ञान पर बल

शोधार्थी ने शोध में पाया की शिक्षिका विद्यालयों में जो पाठ्यक्रम को निर्धारित किया गया है उसे पाठ्यक्रम को पूरा कर लेने तथा वर्ष के अंत में होने वाली परीक्षा में अच्छे अंक

को प्राप्त कर लेने को ही अपना दायित्व मान लिया है। शिक्षाविद लता पांडे बताती हैं कि "पढ़ना ऐसा कौशल है जो एक बार सही ढंग से बच्चों के अंदर विकसित हो गया तो बच्चा स्थाई पाठक बनकर रहता है फिर पढ़ना ही उसके लिए दुनिया में सबसे अधिक आनंद दायक काम होता है उसे नई-नई किताबें ढूंढने उन्हें पढ़ने में रस प्राप्त होता है एक किताब पढ़ कर खत्म करने के बाद दूसरी किताब पढ़ने की ललक जागती है किताब पढ़ने के बाद उसके पात्रों के उसकी विषय वस्तु के बारे में सोचता है उसके मन में करेगा तो किसी और से पढ़ी गई किताब के बारे में बात करेगा एक बार पढ़ने की भूख जग गई तो वह जीवन पर्यंत बनी रहती है।"

## निष्कर्ष

किसी भी शोध का सबसे बड़ा उद्देश्य है की वह शोध समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए एक कदम उठाने का प्रयास हो। इस लघु शोध में प्रारंभिक विद्यालय में अध्यनरत विद्यार्थियों की बुनियादी साक्षरता एवं उनकी पढ़ने की समझ का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है जिसमे पाया गया की शिक्षार्थियों को पढ़ने के प्रति अपनी रुचि को बढ़ाना अति आवश्यक है उनको समझना होगा कि किसी भी पाठ को सिर्फ पढ़ लेना तथा परीक्षा में उत्तीर्ण कर लेना ही उसके मुख्य उद्देश्य नहीं है बल्कि किसी भी पाठ को इस प्रकार से पढ़ा जाए कि वह उनके आत्मसात हो जाए तथा वह पढ़ने के लिए सिर्फ अपने पाठ्य पुस्तक पर निर्भर न रहे बल्कि अपने आसपास की सभी चीजों से अपने आप को पढ़ने के लिए प्रेरित करते रहें। पढ़ना सिर्फ वर्णमाला की पहचान शब्द तथा वाक्य को बोल भर पाना नहीं है बल्कि इसके आगे लिखे हुए को अर्थ समझकर अपना नजरिया बनाना या फिर अपनी निजी समाझ विकसित करना है। शब्द के छोटे-छोटे टुकड़ों को बोलना पढ़ना नहीं हो सकता है।

पढ़ने का मुख्य अर्थ लिखे हुए के साथ संवाद करना और अपने अनुभव तथा सैद्धांतिक संरचना के ढांचे में लिखे हुए को ढालना। शिक्षकों के दृष्टिकोण से यह पाया गया की आजकल के विद्यालय में जो पद्धति चलाई जा रही है इसे बदलने की आवश्यकता है। तथा इसी के साथ-साथ इमार्जेंट लर्निंग की पद्धति को भी अपनाना होगा शिक्षकों को यह समझना होगा कि पढ़ना एक अचानक से प्राप्त क्रिया नहीं है। इसमें आकृतियों की और उससे जुड़ी ध्वनियों वाक्य विन्यासों शब्दों और वाक्य के अर्थ और उनके साथ ही अनुमान लगाने का एक कौशल भी शामिल है। पढ़ने में सबसे महत्वपूर्ण है लिखी हुई जानकारी को ग्रहण करना। शिक्षकों को चाहिए कि वह एक ऐसा वातावरण बनाएं जिससे कि छात्रों को या छात्राओं को पढ़ने का एक अच्छा माहौल मिले एक ऐसा वातावरण बनाया जाए जिससे की विद्यार्थियों के आसपास पढ़ने की वातावरण विकसित हो साथ ही शिक्षकों को पाठ सामग्री की अर्थहीनता को दूर करना चाहिए एवं छात्रों को डिकोडिंग यानी की शब्द को टुकड़ों में बांट बांट कर पहचानने और उसे बोलने एवं पढ़ने जैसी चीजों से दूर होना चाहिए। तथा इसी के साथ ही शिक्षकों को प्रारंभिक विद्यालयों में भी पुस्तकालय को बच्चों के लिए मुहैया कराना अति आवश्यक है बच्चे अपने पाठ्यक्रम के इतर कहानी,कविताएं,नौटंकी,नाटक को जितना ज्यादा देखे सुनेंगे पढ़ेंगे  उससे उनके अंदरपढ़ने की समझ विकसित होगी। अभिभावकों को बच्चों पर किसी प्रकार का बोझ नहीं बनाना चाहिए। उनको यह बात की चिंता नहीं करनी चाहिए कि उनका बच्चा कक्षा 2 में है तथा अभी पुस्तक नहीं पढ़ पा रहा है।उनको इत्मीनान के साथ इस बात का विश्वास रखना चाहिए कि पढ़ना  धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया है। तथा इसमें समय लगता है पढ़ने में सबसे ज्यादा आवश्यक है पढ़ना और उसके साथ उसका अर्थ ग्रहण कर पाना इसी के साथ अभिभावकों आकांक्षाओं से मुक्त होना होगा उनको अपने बच्चों में विश्वास जागृत करना होगा कि उनके बच्चे धीरे-धीरे ही सही लेकिन अच्छा पढ़ सकेंगे।अभिभावकों को सिर्फ विद्यालय के भरोसे ही बच्चों को नहीं छोड़ देना होगा बल्कि उनको अपने घर पर भी एक ऐसा माहौल बनाना होगा जिससे कि बच्चों में पढ़ने की समझ विकसित हो और उससे भी ज्यादा बच्चों को पढ़ने के लिए एक उत्सुकता, प्रेरणा

भरा ऐसा माहौल देना चाहिए जिससे कि बच्चों में खुद नवीन पुस्तक तथा पाठ सामग्रियां पढ़ने में आनंद मिले अभीभावकों को इन सभी चीजों की उपलब्धता करनी होगी।

*****

## संदर्भ


- Albert, M. (1975). Cerebral dominance and reading habits. *Nature, 256*(5510), 403.
- Beck, I. (1985). Five problems with children's comprehension in the primary grades. In J. Osborn, P. T. Wilson, & R. C. Anderson (Eds.), *Reading education: Foundations for a literate America* (pp. 239–253). Lexington Books.
- Biemiller, A. (1970). The development of the use of graphic and contextual information as children learn to read. *Reading Research Quarterly, 6*(1), 75–96.
- Betts, E. A. (1963). *Ride in, Time to play: Second Pre-primer, Betts Basic Readers* (3rd ed.). American Book.
- Betts, E. A., & Welch, C. M. (1963). *Stop and Go: All in a Day, Third Pre-primer, Betts Basic Readers*. American Book.
- Cambonan, B. (1984). Language learning and literacy. In A. Butler & J. Turbill (Eds.), *Two in a reading-buying classroom* (pp. 5–9). Heinemann.
- Cattell, J. M. (1886). Time taken up by cerebral operations. *Mind, 11*, 220–242.
- Chomsky, N. (1965). *Lecture at Project Literacy, Cornell University, June 18*.
- Goodman, K. (1986). What is whole in whole language? Heinemann.
- Goodman, Y. M. (1967). *Unpublished dissertation: A psycholinguistic description of observed oral reading phenomena in selected beginning readers*. Wayne State University.
- Hayes, W. D. (1963). *My brother is a genius: Adventures Now and Then* Book 6. Betts Basic Readers (3rd ed.). Betts & Welch.
- Hood, J., & Kendall, J. R. (1975). Qualitative analysis of oral reading errors of reflective and impulsive second graders: Follow-up study.
- Huey, E. (1908). *The science and pedagogy of reading* (Reprint ed., 1968). MIT Press.
- Krishna Kumar. (1992). *Child language and teacher*. National Book Trust India.
- Miller, G. A. (1963). Some preliminaries to psycholinguistics. *American Psychologist, 18*, 21–29.
- McCracken, G., & Walcott, C. C. (1963). *Basic reading, teacher's ed. for the pre-primer and primer*. B. Lippincott.
- Miller, G. A. (1963). Decision units in the perception of speech. *Institute of Radio Engineering Transactions on Information Theory, 8*, 81–83.

- Owings, R. A., Peterson, O. A., Weldshord, J. D., Morris, C. D., & Stein, B. S. (1980). Spontaneous monitoring and regulation of learning: A comparison of successful and less successful ninth graders. *Journal of Educational Psychology, 72*, 250–256.
- Paris, S. G., & Lindauer, B. K. (1976). The role of inference in children's comprehension and memory for sentences. *Cognitive Psychology, 8*, 217–227.
- Pearson, P. D., Hansen, J., & Goroon, C. (1979). The effect of background knowledge on young children's comprehension of explicit and implicit information. *Journal of Reading Behavior, 11*, 201–209.
- Prom, P. D., & Son, J. (1980). Toward a theory of reading comprehension instruction. *Topics in Language and Literacy*.
- Serres, M., Jose, C., & R. C. (1979). A cross-cultural perspective on reading comprehension. *Reading Research Quarterly, 15*, 10–20.
- Sinha, S. (2001). Acquiring literacy in schools. *Seminar, 493*, 38–421.
- Spache, G. (1964). *Reading in the elementary school*. Allyn & Bacon.
- Taylor, E. A. (n.d.). The spans: Perception, apprehension and recognition. *American Journal of Ophthalmology, 44*, 501–507.
- Teal, D. H., & Salvi, E. (1996). Introduction: Emergent literacy as a perspective for examining how young children learn to read. *Reading Research Quarterly, 6*, 50–63.
- Weber, R. M. (1970). A linguistic analysis of first-grade reading errors. *Reading Research Quarterly, 5*, 427–451.
- Wilson, P. T., & Anderson, R. C. (1985). Reading comprehension and school learning. In J. Osborn & P. T. Wilson (Eds.), *Reading education: Foundations for a literate America* (pp. 257–273). Lexington Books.

शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 77-93
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

आलेख

# उत्तर प्रदेश में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की अवसंरचना, सुविधाएँ और चुनौतियों का अन्वेषणात्मक अध्ययन

किरण ऋचा
आरआईई, अजमेर,एनसीईआरटी
ईमेल: richakiran96@gmail.com

**सार**

*यह अध्ययन उत्तर प्रदेश के ललितपुर, झांसी, और हमीरपुर जिलों के कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (केजीबीवी) स्कूलों में बुनियादी ढांचे, सुविधाओं और संचालनात्मक चुनौतियों की स्थिति का अध्ययन करता है। पर्यवेक्षणों और फोकस ग्रुप डिस्कशन (एफ़जीडीs) का उपयोग करते हुए, यह शोध महत्वपूर्ण मुद्दों को उजागर करता है जैसे अपर्याप्त सीमा दीवारें, खराब नालियां, अपर्याप्त रोशनी, प्रयोगशालाओं की कमी और आपदा प्रबंधन मॉक ड्रिल और करियर काउंसलिंग में कमियां। निष्कर्षों में स्वच्छता, कर्मचारियों के वेतन से असंतोष, और शैक्षिक गुणवत्ता में अंतराल भी सामने आते हैं। इन समस्याओं को दूर करने और केजीबीवी के समग्र कार्यप्रणाली में सुधार करने के लिए सुझाव दिए गए हैं।*

***कूट शब्द: कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, बुनियादी ढांचा, स्वच्छता, शिक्षा,हाशिये पर स्थित लड़कियां।***

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (केजीबीवी) कार्यक्रम, जिसे 2004 में सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) के तहत भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया था, एक परिवर्तनकारी पहल है। इसका उद्देश्य हाशिये पर स्थित समुदायों की लड़कियों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करना है, विशेष रूप से ग्रामीण और अविकसित क्षेत्रों में। इन समुदायों में अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी), अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी), और अल्पसंख्यक समूह शामिल हैं। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य साक्षरता में लिंग और सामाजिक अंतर को पाटना है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता

दर राष्ट्रीय औसत से कम है और शिक्षा में लिंग असमानताएँ काफी अधिक हैं (शिक्षा मंत्रालय, 2004)।

केजीबीवी कार्यक्रम उच्च प्राथमिक स्तर पर आवासीय स्कूलिंग सुविधाएं प्रदान करता है, जो विशेष रूप से उन लड़कियों के लिए हैं जिन्होंने स्कूल छोड़ दिया है या कभी स्कूल नहीं गईं। यह नि:शुल्क शिक्षा, आवास और आवश्यक सुविधाएं प्रदान करके इन लड़कियों को शिक्षा प्रणाली में पुनः प्रवेश करने, शैक्षिक रूप से पीछे न पड़ने और महत्वपूर्ण जीवन कौशल प्राप्त करने का अवसर देता है। स्कूलों में उन सिस्टमात्मक बाधाओं को दूर करने पर भी ध्यान केंद्रित किया जाता है, जैसे गरीबी, लिंग भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार, जो अक्सर लड़कियों को गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त करने से रोकते हैं (भारती, 2018)। केजीबीवीs में 75% सीटें एससी, एसटी, ओबीसी और अल्पसंख्यक समुदायों की लड़कियों के लिए आरक्षित हैं, जबकि शेष 25% सीटें गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले घरों की लड़कियों के लिए प्राथमिकता दी जाती हैं। ये प्रावधान कार्यक्रम की समानता और पहुंच के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं, जो सबसे वंचित वर्गों के लिए शैक्षिक अवसर सुनिश्चित करते हैं (शिक्षा मंत्रालय, 2004)।

अपने प्रारंभ से ही केजीबीवी कार्यक्रम ने लड़कियों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई महत्वपूर्ण सुधार किए हैं। 2007 में, बारहवीं पंचवर्षीय योजना के तहत, इस कार्यक्रम को सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) के साथ एकीकृत किया गया, जिससे इसका दायरा बढ़ा और इसके प्रभाव को मजबूत किया गया। 2018-19 में और सुधार किए गए, जब केजीबीवी को वरिष्ठ माध्यमिक स्तर तक उन्नत करने की व्यवस्था की गई, ताकि 150–250 लड़कियों को गर्ल्स सेकेंडरी स्कूल (जीएसएस) कार्यक्रम के अनुरूप समायोजित किया जा सके। केजीबीवी को समग्र शिक्षा अभियान के तहत एकीकृत करना इस बात को रेखांकित

करता है कि ये स्कूल शिक्षा में समानता और लिंग असमानताओं को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (शर्मा और सिंह, 2020)।

इसके बावजूद, केजीबीवी कार्यक्रम कई चुनौतियों का सामना करता है जो इसके पूर्ण संभावनाओं को प्रभावित करती हैं। उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में किए गए अनुसंधान ने कई समस्याओं को उजागर किया है, जहां केजीबीवी स्कूलों की संख्या अधिक है। इन समस्याओं में अपर्याप्त बुनियादी ढांचा, अपर्याप्त स्टाफ और शैक्षिक गुणवत्ता और वितरण में अंतर शामिल हैं। ललितपुर, झांसी और हमीरपुर जैसे जिले इन समस्याओं के उदाहरण हैं, जहां स्थल निरीक्षण और प्रमुख हितधारकों के साथ फोकस ग्रुप डिस्कशन (एफ़जीडी) के माध्यम से महत्वपूर्ण खामियाँ सामने आई हैं। समस्याएँ जैसे कि रखरखाव की कमी, शिक्षण संसाधनों का अभाव, और समग्र विकास पर ध्यान न देने की आवश्यकता, नीति सुधार और लक्षित निवेश की तत्काल आवश्यकता को उजागर करती हैं (भारती, 2018)।

शिक्षा को हमेशा सामाजिक और आर्थिक प्रगति की कुंजी माना गया है। यह व्यक्तियों को साक्षरता, गणना, संवाद और समस्या-समाधान जैसे महत्वपूर्ण कौशल प्रदान करती है, जो व्यक्तिगत और राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक हैं। प्रौद्योगिकी में विकास और उत्पादन विधियों में बदलाव के संदर्भ में, शिक्षा एक अनुकूलनशील और कुशल मानव संसाधन तैयार करने में बढ़ोतरी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक राष्ट्र के लिए सतत विकास प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वह पुरुषों और महिलाओं के लिए समावेशी और समान शिक्षा सुनिश्चित करे। केजीबीवी कार्यक्रम इस सिद्धांत को साकार करता है, क्योंकि यह हाशिये पर स्थित लड़कियों को गरीबी और सामाजिक वंचना के चक्र को तोड़ने का अवसर प्रदान करता है (शिक्षा मंत्रालय, 2004)।

यह अध्ययन उत्तर प्रदेश के ललितपुर, झांसी और हमीरपुर जिलों में केजीबीवी

स्कूलों की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करता है, जिसमें स्थल निरीक्षण और प्रमुख हितधारकों के साथ फोकस ग्रुप डिस्कशन जैसी गुणात्मक अनुसंधान विधियों का उपयोग किया गया है। इन स्कूलों द्वारा सामना की जा रही समस्याओं और अंतरालों की पहचान करके, यह अनुसंधान केजीबीवी कार्यक्रम की प्रभावशीलता में सुधार लाने के लिए व्यापक विचार-विमर्श में योगदान करने का उद्देश्य रखता है, विशेष रूप से समान सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक संदर्भों में। निष्कर्ष नीति-स्तरीय हस्तक्षेपों, बेहतर बुनियादी ढांचे और क्षमता निर्माण पहलों की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं, ताकि छात्रों के समग्र विकास को सुनिश्चित किया जा सके। अंततः, यह अध्ययन कार्यक्रम के प्रभाव को बढ़ाने और एक समान और प्रगतिशील समाज बनाने में सहायक तर्कशील सुझाव प्रदान करने का लक्ष्य रखता है (कुमार एट अल., 2019)।

## संबंधित साहित्य की समीक्षा

गगोई, एस., और गोस्वामी, यू. (2015) द्वारा किया गया अध्ययन, जिसका शीर्षक है "केजीबीवी की शैक्षिक सशक्तिकरण में भूमिका का मूल्यांकन: एक संक्षिप्त विश्लेषण", कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों (केजीबीवी) के महत्व को उजागर करता है, जो असम में वंचित लड़कियों के बीच शैक्षिक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इस अध्ययन में आवासीय स्कूलिंग और लचीली शिक्षाशास्त्र के माध्यम से अवसरों पर जोर दिया गया है, लेकिन इसमें विधिवत रूप से साक्ष्य और सांख्यिकी विश्लेषण की कमी है। अगर इस अध्ययन को संदर्भित डेटा और कार्यकारी सिफारिशों के साथ मजबूत किया जाता, तो इसके निष्कर्षों को नीति सुधार उद्देश्यों के साथ बेहतर तरीके से जोड़ा जा सकता था।

मिल्लर और लिटसिंग (2015) ने ग्रामीण भारत में लड़कियों की शिक्षा पर एनपीईजीईएल/केजीबीवी कार्यक्रम के प्रभाव का मूल्यांकन किया। उनके अध्ययन में यह पाया गया कि इस कार्यक्रम के परिणामस्वरूप लड़कियों की ऊपरी प्राथमिक विद्यालयों में

नामांकन में 6-7 प्रतिशत अंक की महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। इस कार्यक्रम ने लिंग-संवेदनशील बुनियादी ढांचे और संसाधनों में सुधार पर ध्यान केंद्रित किया और लड़कों के नामांकन पर भी सकारात्मक प्रभाव के प्रारंभिक साक्ष्य दिखाए। यह अनुसंधान शिक्षा में लड़कियों की विशेष जरूरतों को पूरा करने के लिए लक्षित हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता को उजागर करता है। अग्रवाल (2016) ने छत्तीसगढ़ के आदिवासी और गैर-आदिवासी कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों (केजीबीवी) में लड़कियों के जीवन कौशल का अध्ययन किया और उन्हें अन्य स्कूलों की लड़कियों से तुलना की। इस अध्ययन में 720 लड़कियों को शामिल किया गया, और पाया गया कि आदिवासी केजीबीवी छात्राओं में गैर-आदिवासी छात्राओं और अन्य स्कूलों की लड़कियों की तुलना में जीवन कौशल में श्रेष्ठता थी। परिणाम बताते हैं कि समर्थनकारी शैक्षिक वातावरण और आदिवासी लड़कियों द्वारा सामना की जाने वाली विशिष्ट चुनौतियाँ इन जीवन कौशलों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। यह अध्ययन संदर्भ-विशिष्ट शैक्षिक हस्तक्षेपों के महत्व को और केजीबीवीs जैसे आवासीय स्कूलों की भूमिका को उजागर करता है जो वंचित लड़कियों में जीवन कौशल और लचीलापन को बढ़ावा देते हैं।

सिंह (2017) ने बिहार में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों (केजीबीवी) में कक्षा VI के छात्रों के हिंदी भाषा प्रदर्शन के कारणों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में यह पाया गया कि लगभग 40% छात्राओं को हिंदी में समस्या थी, जिसका मुख्य कारण शिक्षकों की कमी (46%) और विशेष रूप से भाषा शिक्षकों के लिए अपर्याप्त प्रशिक्षण था। आवासीय सुविधाओं के बावजूद, उच्च प्राथमिक स्तर पर संक्रमण दर में 6-24% की कमी पाई गई। इस अध्ययन में प्रभावी शिक्षण प्रथाओं की कमी, अपर्याप्त शिक्षाशास्त्रीय प्रशिक्षण और भाषा शिक्षण के लिए संरचित गतिविधियों का अभाव प्रमुख समस्याएँ थीं। इसने शिक्षकों की तैनाती, प्रशिक्षण, और संसाधनों के प्रबंधन में सुधार की आवश्यकता को रेखांकित किया।

अग्रवाल (2017) ने छत्तीसगढ़ के आदिवासी और गैर-आदिवासी कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों (केजीबीवी) और अन्य स्कूलों में 720 लड़कियों की शैक्षिक स्थिति का विश्लेषण Classroom Environment Scale के चार आयामों: प्रणाली रखरखाव, व्यक्तिगत विकास, संबंध और प्रणाली परिवर्तन के माध्यम से किया। आदिवासी केजीबीवीs में प्रणाली रखरखाव और व्यक्तिगत विकास में श्रेष्ठ प्रदर्शन देखा गया, जबकि गैर-आदिवासी केजीबीवीs ने संबंध और प्रणाली परिवर्तन आयामों में उत्कृष्टता दिखाई। तुलनाओं से यह स्पष्ट हुआ कि आदिवासी केजीबीवीs को संबंध और प्रणाली परिवर्तन आयामों में सुधार की आवश्यकता है, जबकि गैर-आदिवासी केजीबीवीs को व्यक्तिगत विकास और प्रणाली रखरखाव पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। ये निष्कर्ष विभिन्न स्कूल सेटिंग्स में ताकत और विकास के क्षेत्रों के बारे में सूक्ष्म दृष्टिकोण को उजागर करते हैं।

पार्थसारथी(2018) ने "जीवन कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम का केजीबीवी में जागरूकता स्तर पर प्रभाव" नामक अध्ययन में, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों (केजीबीवीs) के 13-15 वर्ष आयु वर्ग (कक्षा VIII, IX और X) की किशोरी लड़कियों के बीच जीवन कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रभाव का मूल्यांकन किया। 60 छात्रों के नमूने का मूल्यांकन 65-आइटम जीवन कौशल सूची से किया गया, जिसमें जीवन कौशल शिक्षा (एलएसई) के नौ डोमेन शामिल थे। परिणामों ने यह दर्शाया कि प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद सभी नौ डोमेन में जागरूकता में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। यह अध्ययन केजीबीवी छात्रों के बीच मानसिक-सामाजिक क्षमताओं और अंतरवैयक्तिक कौशल को बढ़ाने में जीवन कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता को उजागर करता है।

कुमार और विजय वर्धीनी (2019) ने "केजीबीवी छात्रों के परीक्षा चिंता और शैक्षिक उपलब्धि के संबंध" नामक अध्ययन में, आंध्र प्रदेश के कुप्पम और गुडिपल्ले मंडलों से 100 आठवीं और नौवीं कक्षा के छात्रों के बीच परीक्षा चिंता और शैक्षिक उपलब्धि के बीच संबंध

की जांच की। अध्ययन में पाया गया कि परीक्षा चिंता छात्रों के शैक्षिक प्रदर्शन में महत्वपूर्ण रूप से बाधित कर रही थी, जो शारीरिक अधिक उत्तेजना, तनाव, शारीरिक लक्षण और संज्ञानात्मक चुनौतियों जैसे खराब ध्यान और विफलता का डर के रूप में व्यक्त होती थी। ये कारक धारणा, विचार प्रवाह, और समग्र परीक्षा प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते थे। निष्कर्षों ने परीक्षा चिंता को प्रबंधित करने और केजीबीवी छात्रों के शैक्षिक प्रदर्शन को समर्थन देने के लिए लक्षित हस्तक्षेपों की आवश्यकता को रेखांकित किया।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों पर मौजूद साहित्य उनके महत्व को उजागर करता है, विशेष रूप से भारत में वंचित लड़कियों के बीच शैक्षिक सशक्तिकरण और जीवन कौशल विकास में। गगोई व गोस्वामी (2015) और मिल्लर व लिटसिंग (2015) द्वारा किए गए अध्ययन केजीबीवीs के संभावित प्रभाव को उजागर करते हैं, लेकिन इनमें विधिवत साक्ष्य और सांख्यिकीय विश्लेषण की कमी है। अग्रवाल (2016) और अग्रवाल (2017) द्वारा किए गए अनुसंधान से पता चलता है कि विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्रों में केजीबीवीs जीवन कौशल और प्रणाली रखरखाव में उत्कृष्टता प्राप्त करते हैं, लेकिन छात्र-शिक्षक संबंध और प्रणाली परिवर्तन में सुधार की आवश्यकता को भी उजागर करते हैं। सिंह (2017) और कुमार और विजय वर्धीनी (2019) परीक्षा चिंता, शिक्षक की कमी, अपर्याप्त प्रशिक्षण और शैक्षिक प्रदर्शन पर इन कारकों के प्रभाव को उजागर करते हैं। प्रशान्ति (2018) जीवन कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सकारात्मक प्रभाव को रेखांकित करती हैं। हालांकि, इन निष्कर्षों के बावजूद, केजीबीवी की प्रभावशीलता पर एक समग्र अध्ययन की कमी है, जो बुनियादी ढांचे, स्टाफिंग और मानसिक-सामाजिक कारकों को एकीकृत करता हो, विशेष रूप से विभिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक संदर्भों में।

## शोध उद्देश्य

- ललितपुर, झांसी, और हमीरपुर जिलों में केजीबीवी विद्यालयों की अवसंरचना की स्थिति का मूल्यांकन करना।
- इन विद्यालयों में शैक्षिक और मनोरंजन सुविधाओं की उपलब्धता का मूल्यांकन करना।
- अवसंरचना, सुविधाओं, और उनके शैक्षिक गुणवत्ता पर प्रभाव से संबंधित चुनौतियों का अन्वेषण करना।

## शोध विधि

यह अनुसंधान गुणात्मक विधियों का उपयोग करता है, जिसमें सीधे अवलोकन और फोकस ग्रुप डिस्कशन शामिल हैं, ताकि ललितपुर, झांसी, और हमीरपुर के तीन केजीबीवी विद्यालयों से डेटा एकत्र किया जा सके। शारीरिक अवसंरचना, सुविधाओं, और समग्र पर्यावरण का मूल्यांकन करने के लिए अवलोकन किए गए, जबकि स्टाफ, एसएमसी सदस्य, और सहायक स्टाफ के साथ एफ़जीडी ने उनके अनुभवों और चुनौतियों के बारे में जानकारी प्रदान की। डेटा को श्रेणीबद्ध करने और विश्लेषण करने के लिए थीमेटिक विश्लेषण का उपयोग किया गया।

## प्रतिदर्श

इस अध्ययन को पूर्ण करने के लिए प्रतिदर्श के रूप में तीनों केजीबीपी के स्कूलों के सभी टीचिंग तथा नॉन टीचिंग कर्मचारियों को सम्मिलित किया गया है था उसे जुड़े सभी गतिविधियों को भी सम्मिलित किया गया है।

**परिसीमन**

यह अध्ययन यूपी राज्य के तीन जिलों तक सीमित है तथा उसमें आने वाले केजीबीपी स्कूल जैसे केजीवीपी ललितपुर , हमीरपुर एवं झांसी आदि को सम्मिलित किया गया है।

**आंकड़ा संग्रहण**

शोधार्थी द्वारा आंकड़ा संग्रहण के लिए एमटीएस तथा एसएमसी का फोकस ग्रुप डिस्कशन तथा विद्यालय का ऑब्जरवेशन करने के लिए ऑब्जरवेशन शेड्यूल का इस्तेमाल किया गया है।

विश्लेषण और व्याख्या : फोकस ग्रुप डिस्कशन

ललितपुर में एसएमसी सदस्यों के साथ एफ़जीडी : लालितपुर में एसएमसी सदस्यों के साथ एफ़जीडी से यह सामने आया कि बैठक में केवल चार सदस्य उपस्थित थे। सदस्य अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक नहीं थे, जिससे उनकी भागीदारी सीमित हो गई। उन्हें अपने कार्य प्रोफ़ाइल की जानकारी नहीं थी और वे वित्तीय निर्णयों में शामिल नहीं थे। चर्चा में यह बात सामने आई कि अभिभावक कक्षा उन्नयन और अपर्याप्त स्टाफिंग को लेकर चिंतित थे, और कोई अलग वार्डन नहीं था, जिसके कारण पूर्णकालिक शिक्षकों को दोहरी जिम्मेदारी निभानी पड़ रही थी। सदस्य योजनाओं जैसे 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' और 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' से परिचित थे, लेकिन उन्हें NTSE, कला उत्सव, और योग ओलंपियाड के बारे में जानकारी नहीं थी। उन्हें स्कूल उत्सवों में आमंत्रित नहीं किया गया और वे योजना और विकास में शामिल नहीं थे। हालांकि, उन्होंने स्कूल से बाहर होने वाली लड़कियों को वापस स्कूल लाने में भूमिका निभाई। चिकित्सा सुविधाओं की कमी एक बड़ा मुद्दा था।

**हमीरपुर में** एसएमसी **सदस्यों के साथ** एफ़जीडी : हमीरपुर में, बैठक में 10 एसएमसी सदस्य शामिल हुए। उनके केजीबीवी प्रमुख के साथ अच्छे संबंध थे, लेकिन वे वित्तीय मामलों में शामिल नहीं थे। मासिक बैठकें आयोजित होती थीं, लेकिन उपस्थिति असंगत थी। सदस्य केजीबीवी के बारे में विज्ञापनों के माध्यम से जानते थे, लेकिन अपने कर्तव्यों के बारे में जागरूक नहीं थे। प्रमुख चुनौतियाँ गणित, उर्दू, अंग्रेजी, और समाजशास्त्र जैसे विषयों में शिक्षक की कमी और एसएमसी सदस्यों के लिए कोई ओरिएंटेशन या प्रशिक्षण की कमी थी। सुझावों में स्कूल को कक्षा 12 तक अपग्रेड करना, स्टाफ की खाली पदों को भरना, चिकित्सा स्टाफ की नियुक्ति करना, और स्थानीय कौशल जैसे पेंटिंग और मेहंदी को बढ़ावा देना शामिल थे।

झांसी में सहायक स्टाफ के साथ एफ़जीडी: इस एफ़जीडी में पांच स्टाफ सदस्य शामिल थे: एक सुरक्षा गार्ड, कुक, चपरासी, अकाउंटेंट, और क्लीनर। वे सभी परिसर से बाहर से आते थे, सिवाय कुक के, जो साइट पर रहते थे। समस्याएँ थीं: अपर्याप्त सफाई सामग्री, खराब कार्यशील वाशिंग मशीन, और गर्म पानी की कमी। वेतन में देरी, स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपस्थिति, और उचित प्रशिक्षण की कमी आम चिंताएँ थीं। स्टाफ को विशेष समस्याएँ भी थीं: सुरक्षा गार्ड को गार्ड रूम की आवश्यकता थी, कुक को बीमारी के दौरान वैकल्पिक कुक की जरूरत थी, और क्लीनरों को बेहतर सफाई उत्पादों की आवश्यकता थी।

हमीरपुर में सहायक स्टाफ के साथ एफ़जीडी: इसमें पांच सहायक स्टाफ सदस्य शामिल थे। क्लीनर्स ने दैनिक सफाई की, लेकिन उन्हें सफाई सामग्री की कमी और गर्म पानी की अनुपस्थिति जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा। कुक ने रसोई में संकुचित भंडारण क्षेत्र और RO सुविधाओं की कमी का उल्लेख किया। सुझावों में वेतन वृद्धि, गार्ड रूम की व्यवस्था, और स्वास्थ्य और स्वच्छता चिंताओं को संबोधित करना शामिल था। कुक ने निश्चित कार्य घंटों और बीमारी के दौरान वैकल्पिक कुक की मांग की।

अवसंरचना और सुविधाएँ

सीमा दीवारें और सुरक्षा

- सीमा दीवारें निम्न थीं और इनमें बाड़ की कमी थी, जिससे सुरक्षा पर खतरा था।
- लालितपुर और हमीरपुर में बाहरी खतरे की चिंता थी।

निकासी प्रणालियाँ

- लालितपुर और हमीरपुर में खराब निकासी प्रणालियाँ देखी गईं।
- खुले गड्ढों में पानी जमा होता था, जो स्वास्थ्य के लिए खतरा था।

स्वच्छता और सैनिटेशन

- स्नानघर में बुनियादी सुविधाओं की कमी थी और इनकी मरम्मत की आवश्यकता थी।
- मच्छरों का प्रकोप और गंदे हालात ने बेहतर रखरखाव की आवश्यकता को उजागर किया।

रोशनी और सुविधाएँ

- कक्षा कक्षों, छात्रावासों और रसोई में अपर्याप्त रोशनी एक सामान्य समस्या थी।
- विषय-विशेष प्रयोगशालाओं की अनुपस्थिति ने शैक्षिक गुणवत्ता को बाधित किया।

व्याख्या : ललितपुर, झांसी, और हमीरपुर में केजीबीवी विद्यालयों में किए गए क्षेत्रीय अवलोकनों के आधार पर, यह स्पष्ट है कि इन विद्यालयों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो उनके संचालन की दक्षता और छात्रों को प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करती हैं। सबसे प्रमुख समस्या जो देखी गई, वह थी अवसंरचना की खराब स्थिति। लालितपुर और हमीरपुर में, सीमा दीवारें निम्न थीं और उचित बाड़ की कमी थी, जिससे सुरक्षा के महत्वपूर्ण सवाल उठे। इन खामियों के कारण विद्यालय बाहरी खतरों के प्रति संवेदनशील हो गए थे, जो छात्रों की सुरक्षा को प्रभावित करते थे। इसके अलावा, इन क्षेत्रों में निकासी प्रणालियाँ खराब रख-रखाव की स्थिति में थीं, खुले गड्ढों में

पानी जमा हो रहा था, जिससे स्वच्छता समस्याएँ और संभावित स्वास्थ्य खतरे उत्पन्न हो रहे थे। स्वच्छता और सैनिटेशन एक और प्रमुख चिंता बनकर सामने आई। स्नानघर जर्जर स्थिति में पाए गए, जिनमें बुनियादी सुविधाओं की कमी थी और इन्हें तत्काल मरम्मत की आवश्यकता थी। उचित वेंटिलेशन की कमी और मच्छरों के प्रकोप ने स्वच्छता की समस्या को और बढ़ा दिया, जिससे छात्रों के लिए एक स्वस्थ जीवनशैली बनाए रखना कठिन हो गया। कक्षाओं, छात्रावासों और रसोई में रोशनी की कमी भी एक सामान्य समस्या थी, जो न केवल अध्ययन के माहौल को प्रभावित करती थी, बल्कि छात्रों की समग्र सुरक्षा को भी खतरे में डालती थी। विषय-विशेष प्रयोगशालाओं की कमी, विशेषकर मुख्य विषयों के लिए, भी शैक्षिक गुणवत्ता में बाधा डालने वाला एक महत्वपूर्ण कारण था।

सभी तीन जिलों में स्टाफ की कमी एक सामान्य समस्या थी, जिसमें गणित, उर्दू, अंग्रेजी, और समाजशास्त्र जैसे प्रमुख विषयों में पद रिक्त थे। शिक्षकों पर अक्सर दोहरी जिम्मेदारी डाली जाती थी, जिससे न केवल उनकी शैक्षिक प्रभावशीलता पर प्रभाव पड़ता था, बल्कि कर्मचारियों का मानसिक तनाव भी बढ़ता था। इसके अतिरिक्त, एसएमसी सदस्यों के अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के प्रति सीमित जागरूकता थी, जिससे वे स्कूल के विकास में अपना योगदान नहीं दे पा रहे थे। एसएमसी सदस्यों के लिए कोई ओरिएंटेशन या प्रशिक्षण की कमी ने इस समस्या को और बढ़ा दिया।

सहायक स्टाफ, जिसमें क्लीनर, कुक, और सुरक्षा कर्मी शामिल थे, को भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इनमें वेतन में देरी, उचित प्रशिक्षण की कमी, और स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपस्थिति शामिल थीं। इन चुनौतियों के बावजूद, स्कूलों ने छूटे हुए लड़कियों को फिर से स्कूल में दाखिला दिलाने और 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' जैसी योजनाओं को बढ़ावा देने के प्रयास किए। हालांकि, समग्र स्थिति तत्काल हस्तक्षेप की आवश्यकता को दर्शाती है, क्योंकि अवसंरचनात्मक, स्टाफिंग और संगठनात्मक कमियों के

कारण स्कूलों की यह क्षमता सीमित हो गई है कि वे अपने उद्देश्य को पूरा कर सकें, जो कि हाशिए पर रहने वाली लड़कियों को सशक्त बनाना है।

सिफारिशें

अवसंरचना और सुरक्षा

- सीमा दीवारों की ऊँचाई बढ़ाई जाए और सुरक्षा के लिए बाड़ लगाई जाए।
- स्वास्थ्य खतरों को रोकने के लिए निकासी प्रणालियों को सुधारा जाए।
- स्नानघरों का पुनर्निर्माण किया जाए और कार्यशील सफाई उपकरण प्रदान किए जाएं।

शैक्षिक और समर्थन सुविधाएँ

- कंप्यूटर और विज्ञान प्रयोगशालाएँ स्थापित की जाएं।
- छात्रों के लिए आपदा प्रबंधन प्रशिक्षण और आत्मरक्षा कक्षाएँ शुरू की जाएं।

स्वास्थ्य और पोषण

- स्वास्थ्य रिकॉर्ड बनाए रखने और आपातकालीन परिस्थितियों से निपटने के लिए चिकित्सा स्टाफ नियुक्त किया जाए।
- रसोई में उचित भंडारण और आरओ सुविधाएँ सुनिश्चित की जाएं।

कर्मचारी कल्याण

- कार्यभार के अनुरूप वेतन संरचना को सुधारा जाए।
- कर्मचारियों और एसएमसी सदस्यों के लिए नियमित प्रशिक्षण और ओरिएंटेशन प्रदान किया जाए।

## निष्कर्ष

यह अध्ययन ललितपुर, हमीरपुर और झांसी जिलों के केजीबीवी विद्यालयों में गंभीर चुनौतियाँ उजागर करता है। इस अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि इन विद्यालयों को अवसंरचनात्मक, सुविधाओं से संबंधित और संचालन संबंधी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये विद्यालय, जो हाशिए पर रहने वाली लड़कियों को सशक्त बनाने के लिए महत्वपूर्ण हैं, निम्न सीमा दीवारें, खराब निकासी प्रणालियाँ, और अपर्याप्त रोशनी जैसी अवसंरचनात्मक समस्याओं से जूझ रहे हैं, जो न केवल छात्रों की सुरक्षा को प्रभावित करते हैं बल्कि शैक्षिक गुणवत्ता को भी कमजोर करते हैं। स्वच्छता और सैनिटेशन की स्थिति भी खराब है, जिसमें जर्जर स्नानघर और अपर्याप्त सफाई सामग्री जैसी समस्याएँ हैं, जो एक अस्वस्थ वातावरण पैदा करती हैं। इसके अलावा, विशेष शैक्षिक सुविधाओं की कमी, जैसे विषय-विशेष प्रयोगशालाएँ, छात्रों के शैक्षिक अनुभव को और बाधित करती हैं। संचालन संबंधी समस्याएँ स्टाफ की कमी, चिकित्सा स्टाफ की अनुपस्थिति, और मौजूदा कर्मचारियों पर दोहरी जिम्मेदारी डालने से बढ़ जाती हैं। एसएमसी सदस्यों के अपने कर्तव्यों के प्रति सीमित जागरूकता भी स्कूल के सुधार प्रयासों में कमी लाती है। इन चुनौतियों के बावजूद, कुछ सकारात्मक प्रयास किए गए हैं, जैसे कि छूटे हुए लड़कियों को फिर से स्कूल में दाखिला दिलाना और सरकारी योजनाओं को लागू करना जैसे 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ'। केजीबीवी विद्यालयों के संचालन को बेहतर बनाने के लिए अवसंरचना में लक्षित निवेश, कर्मचारियों के लिए व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की शुरुआत, और बेहतर कल्याण उपायों को लागू करने की तत्काल आवश्यकता है। इन समस्याओं का समाधान इन विद्यालयों को अपने उद्देश्य को पूरा करने में सक्षम बनाएगा, जो है हाशिए पर रहने वाली लड़कियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना और उन्हें गरीबी और सामाजिक बहिष्कार के चक्र को तोड़ने में सशक्त बनाना।

*****

## संदर्भ


- गोगोई, एस., और गोस्वामी, यू. (2015)। असम में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (केजीबीवी) की शैक्षिक प्रदर्शन पर प्रभावशीलता। *एशियन जर्नल ऑफ़ होम साइंस, 10*(1), 161-167।
- https://doi.org/10.15740/has/ajhs/10.1/161-167
- मेलर, एम., और लिट्सचिग, एस. (2015)। लड़कियों की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा की आपूर्ति को अनुकूलित करना: ग्रामीण भारत में एक नीति प्रयोग से साक्ष्य। *द जर्नल ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्स, 51*(3), 760-802। https://doi.org/10.3368/jhr.51.3.0612-5000R
- शाह, पी. (2011)। लड़कियों की शिक्षा और सशक्तिकरण के लिए विमर्शात्मक स्थान: ग्रामीण भारत के दृष्टिकोण। *रिसर्च इन कंपेरेटिव एंड इंटरनेशनल एजुकेशन, 6*(1), 106-90।
- https://doi.org/10.2304/rcie.2011.6.1.90
- कविथाकिरण, वी. (2015)। केजीबीवीs होम साइंस में पढ़ने वाली लड़कियों की शैक्षिक उपलब्धियों का अध्ययन।
- सिंह, सी. (2017)। बिहार में केजीबीवी छात्रों की हिंदी भाषा क्षमता। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ इनोवेटिव रिसर्च, 5* (2), 127-141। https://doi.org/10.15415/iie.2017.52008
- अग्रवाल, यू. (2017)। छत्तीसगढ़ में आदिवासी और गैर-आदिवासी केजीबीवी की लड़कियों की शैक्षिक स्थिति का अन्य स्कूलों की लड़कियों से तुलना। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लाइड साइकोलॉजी, 7*(1), 49-59.
- वरलक्ष्मी, जी. (2023)। आंध्र प्रदेश में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों का प्रबंधन: स्टेकहोल्डर्स की धारणाएँ। *इंडियन जर्नल ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 69*(4), 861-876।
- https://doi.org/10.1177/00195561231196234
- प्रशांति, बी., और टी. (2018)। केजीबीवीs में लाइफ स्किल्स प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रभाव। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एजुकेशन एंड सोशल रिसर्च, 8*(6), 39-44। https://doi.org/10.24247/ijesrdec20186
- अग्रवाल, यू. (2016)। छत्तीसगढ़ में आदिवासी और गैर-आदिवासी केजीबीवी की लड़कियों के जीवन कौशल का अन्य स्कूलों की लड़कियों से तुलना। *इंडियन जर्नल ऑफ़ हेल्थ एंड वेलबीइंग, 7*(9), 817-822.
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय। (2013, दिसंबर 12)। नेशनल रिपोर्ट ऑफ़ सेकंड नेशनल इवैल्यूएशन ऑफ़ केजीबीवी प्रोग्राम ऑफ़ GOI (नवंबर-दिसंबर 2013)। रिट्रीव्ड फ्रॉम डिपार्टमेंट ऑफ़ स्कूल एजुकेशन एंड लिटरेसी, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया वेबसाइट: http://www.ssa.nic.in

This page is intentionally left blank

शिक्षा संवाद
2023, 10(2): 93-104
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

आलेख

# शिक्षण अधिगम का ताना-बना-लोककथाएँ और शिक्षण विधियां

सुरभि पाल
शिक्षाशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश
ईमेल: surbhipal0507@gmail.com

सार

*भारतीय लोककथाएं और पारंपरिक शिक्षण विधियां भारतीय संस्कृति और परंपराओं का अभिन्न हिस्सा हैं, जो न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि पीढ़ियों से नैतिक मूल्यों, जीवन कौशल, और सांस्कृतिक ज्ञान के संचार का माध्यम भी रही हैं। बाल शिक्षा में ये विधियां बच्चों के मानसिक और नैतिक विकास में अत्यधिक सहायक सिद्ध होती हैं, क्योंकि ये न केवल नैतिक शिक्षा, जीवन के मूल्य, और सामाजिक आदर्शों को बढ़ावा देती हैं, बल्कि बच्चों की सृजनात्मकता और भाषाई क्षमता को भी प्रोत्साहित करती हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य इन लोककथाओं और शिक्षण विधियों के बाल शिक्षा पर प्रभाव का विश्लेषण करना है और यह समझना है कि आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में इन पारंपरिक विधियों को कैसे एकीकृत किया जा सकता है।*

***कूटशब्द: लोककथा, शिक्षण, शिक्षा, साहित्य, अधिगम, संस्कृति।***

भारतीय लोककथाएँ और पारंपरिक शिक्षण विधियाँ भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। यह न केवल समाज के आदर्श और नैतिक मूल्यों को संरक्षित करती हैं, बल्कि शिक्षा और मनोरंजन का एक अनूठा मिश्रण भी प्रदान करती हैं। भारतीय समाज में गुरु-शिष्य परंपरा और लोककथाएँ बालकों के नैतिक और सामाजिक विकास के लिए आधारशिला का काम करती थीं। लोककथाएँ समाज के दर्पण के रूप में कार्य करती हैं, जिनमें परिवार, रिश्ते, संस्कार, और आदर्शों की झलक मिलती है। इनका प्रभाव बच्चों के समग्र मानसिक,

भावनात्मक और नैतिक विकास पर अत्यधिक प्रभाव डालता है। भारतीय लोककथाएँ जैसे पंचतंत्र, जातक कथाएँ, और हिटोपदेश न केवल शिक्षाप्रद हैं, बल्कि बच्चों को नैतिक मूल्यों, कल्पनाशक्ति, और सामाजिक आदर्शों से जोड़ने का माध्यम भी हैं। पारंपरिक शिक्षण विधियों में अनुभव आधारित शिक्षा, कहानी सुनाने की पद्धति, और प्रश्न-उत्तर शैली बच्चों को जटिल अवधारणाओं को समझने में सहायक होती हैं। ये विधियाँ बच्चों की सृजनात्मकता, आलोचनात्मक सोच, और भाषा कौशल को प्रोत्साहित करती हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इन पारंपरिक साधनों को पुनः शामिल करना बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। डिजिटल माध्यमों के साथ इनका संयोजन बच्चों के लिए सीखने की प्रक्रिया को और अधिक रोचक और प्रभावशाली बना सकता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य इन लोककथाओं और पारंपरिक शिक्षण विधियों के बाल शिक्षा पर प्रभाव का विश्लेषण करना है और यह समझना है कि इन्हें आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में कैसे एकीकृत किया जा सकता है।

## लोककथाओं की परिभाषा और महत्व

लोककथाएं उन कहानियों का समूह हैं जो मौखिक परंपराओं के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रेषित होती हैं और किसी समाज की सांस्कृतिक, नैतिक, और ऐतिहासिक विरासत का संरक्षण करती हैं (सिंह, 2015)। इनमें नायक, खलनायक, पशु, पक्षी, और देवी-देवताओं जैसे पात्र शामिल होते हैं, जो समाज की सामूहिक स्मृतियों को जीवंत रखते हुए मानव जीवन के महत्वपूर्ण सबक सिखाते हैं। लोककथाओं का महत्व केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है; वे समाज के नैतिक ढांचे, मूल्य प्रणाली, और पारंपरिक ज्ञान को आगे बढ़ाने का माध्यम हैं। उदाहरण के लिए, पंचतंत्र की कहानियां बच्चों में नैतिकता और व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का विकास करती हैं, जबकि "सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र" सत्य, ईमानदारी और त्याग के महत्व को रेखांकित करती है (शर्मा, 2018)। इस प्रकार, लोककथाएं जीवन के गूढ़ अर्थ और व्यवहारिक ज्ञान को सिखाने का सशक्त माध्यम हैं।

बाल शिक्षा में लोककथाओं की भूमिका

बाल शिक्षा में लोककथाओं का महत्व अत्यधिक व्यापक और बहुआयामी है। ये कहानियां न केवल बच्चों के मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि उनके नैतिक, सृजनात्मक, सांस्कृतिक, और भाषाई विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लोककथाएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपराओं के माध्यम से संरक्षित रहती हैं और समाज के मूलभूत मूल्यों और सांस्कृतिक परंपराओं को आगे बढ़ाने का कार्य करती हैं (सिंह, 2015)। लोककथाओं के माध्यम से बच्चों को न केवल कहानियां सुनने का आनंद मिलता है, बल्कि वे जीवन के महत्वपूर्ण सबक भी सीखते हैं।

सबसे पहले, नैतिक विकास के संदर्भ में लोककथाएं बच्चों को सही और गलत का भेद समझने में मदद करती हैं। ये कहानियां उनके नैतिक निर्णय लेने की क्षमता को प्रोत्साहित करती हैं। उदाहरण के लिए, "कछुआ और खरगोश" की कहानी बच्चों को धैर्य और निरंतरता के महत्व को सिखाती है, जबकि "चालाक लोमड़ी" जैसी कहानियां व्यावहारिक ज्ञान और विवेक का उपयोग करने का महत्व समझाती हैं। ये कहानियां बच्चों में ईमानदारी, साहस, और सहयोग जैसे गुणों का विकास करती हैं (शर्मा, 2018)। दूसरा, लोककथाएं बच्चों की सृजनात्मकता को बढ़ावा देने में सहायक होती हैं। जादुई पात्र, अद्भुत घटनाएं, और अनोखे कथानक बच्चों के मस्तिष्क में जिज्ञासा और कल्पनाशक्ति का संचार करते हैं। इस प्रक्रिया में बच्चों का आलोचनात्मक सोचने का कौशल भी विकसित होता है। कल्पनाशक्ति का यह विकास उन्हें अपनी समस्याओं का रचनात्मक समाधान निकालने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, "सिंड्रेला" जैसी कहानियां बच्चों को सपने देखने और उन्हें साकार करने की प्रेरणा देती हैं। तीसरा, लोककथाएं बच्चों को उनके समाज की संस्कृति और परंपराओं से परिचित कराती हैं, जिससे उनका सांस्कृतिक ज्ञान बढ़ता है। ये कहानियां समाज के इतिहास और मूल्यों को संरक्षित करती हैं और बच्चों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ती हैं। भारतीय लोककथाओं में राजा, रानी, ऋषि, और देवताओं के माध्यम से बच्चों को प्राचीन

भारतीय समाज के आदर्शों और परंपराओं का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए, "सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र" की कहानी सत्य और त्याग के महत्व को उजागर करती है (सिंह, 2015)। इस प्रकार, लोककथाएं सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और उसे आगे बढ़ाने का माध्यम बनती हैं। अंत में, लोककथाएं बच्चों के भाषाई विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन कहानियों को सुनने और पढ़ने से बच्चों की भाषा क्षमता का विकास होता है। वे नई शब्दावली, व्याकरण, और शैली सीखते हैं। नियमित रूप से लोककथाओं का सुनना और कहानियां सुनाना बच्चों में भाषा की सहजता और प्रभावशाली कहानी कहने की कला को भी प्रोत्साहित करता है। साथ ही, यह बच्चों के मौखिक और लेखन कौशल को मजबूत करता है।

भारतीय शिक्षण विधियां और उनका महत्व

भारतीय शिक्षण विधियां बच्चों की समग्र शिक्षा और विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिसमें पारंपरिक पद्धतियां जैसे गुरुकुल प्रणाली, कहानी कहने की विधि और अनुभव आधारित शिक्षा शामिल हैं। गुरुकुल प्रणाली भारत की प्राचीनतम शिक्षण पद्धतियों में से एक है, जहां बच्चे शिक्षक के साथ रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। इसका उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि बच्चों के नैतिक मूल्यों और व्यक्तित्व का विकास करना भी था। इस पद्धति में शिक्षक और शिष्य के बीच निकटता और अनुशासन पर विशेष बल दिया जाता था, जिससे बच्चे ज्ञान और संस्कार दोनों को आत्मसात कर सकें। इसी प्रकार, कहानी कहने की विधि शिक्षा का एक प्रभावी और रोचक माध्यम है, जो बच्चों को सरल और दिलचस्प तरीके से जटिल विषयों को समझने में मदद करती है। इस विधि से बच्चों की कल्पनाशक्ति, सृजनात्मकता और सांस्कृतिक ज्ञान को बढ़ावा मिलता है। लोककथाओं, पौराणिक कथाओं, और ऐतिहासिक घटनाओं को कहानियों के रूप में प्रस्तुत कर बच्चों में नैतिकता और सामाजिक मूल्यों का विकास किया जाता है। उदाहरण के लिए,

"सच्चा बंदर" जैसी कहानियां बच्चों को ईमानदारी और अपनी गलतियों को स्वीकार करने का महत्व सिखाती हैं, जबकि "दीन और धनी" कहानी विनम्रता और आभार प्रकट करने का महत्व बताती है। इसके अतिरिक्त, अनुभव आधारित शिक्षा पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा के बीच एक सेतु का काम करती है, जिसमें बच्चों को प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से सीखने का अवसर मिलता है। यह विधि उनकी व्यावहारिक समझ और स्मरण शक्ति को मजबूत करती है, क्योंकि प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी और प्रभावशाली होता है। उदाहरण के लिए, विज्ञान के सिद्धांतों को प्रयोगशालाओं में प्रयोग के माध्यम से सिखाना या कृषि से जुड़े विषयों को खेतों में ले जाकर समझाना इस पद्धति के उपयोगी उदाहरण हैं। इन पारंपरिक विधियों का महत्व इस तथ्य में निहित है कि वे केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि बच्चों को जीवन के लिए तैयार करती हैं। ये विधियां न केवल शैक्षिक विकास पर ध्यान केंद्रित करती हैं, बल्कि नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी सुदृढ़ करती हैं। वर्तमान समय में, जहां शिक्षा प्रणाली अधिक औपचारिक और तकनीकी हो गई है, इन पारंपरिक विधियों का पुनरावलोकन और समावेश आवश्यक है, क्योंकि ये बच्चों को आत्मनिर्भर, सृजनशील और जिम्मेदार नागरिक बनाने में सहायक होती हैं। भारतीय शिक्षण विधियों का यह समृद्ध इतिहास आज भी बच्चों के समग्र और संतुलित विकास के लिए प्रेरणा देता है।

## लोककथाओं और पारंपरिक शिक्षण विधियों का समन्वय

लोककथाओं और पारंपरिक शिक्षण विधियों का समन्वय बाल शिक्षा को न केवल रोचक बनाता है, बल्कि उसे अधिक प्रभावी और व्यवहारिक भी बनाता है। लोककथाएं सदियों से सांस्कृतिक, नैतिक, और बौद्धिक शिक्षा का माध्यम रही हैं। इनके माध्यम से नैतिक मूल्यों, व्यावहारिक ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत का प्रसार हुआ है (सिंह, 2015)। पारंपरिक शिक्षण विधियां, जिनमें व्याख्यान, संवाद, और पाठ आधारित शिक्षण शामिल हैं,

जब लोककथाओं के साथ संयोजित होती हैं, तो बच्चों के शैक्षिक अनुभव को और समृद्ध बनाती हैं। लोककथाओं का प्रभावी उपयोग शिक्षा में नैतिक मूल्यों को सिखाने का एक सशक्त माध्यम है। उदाहरण के लिए, पंचतंत्र की कहानियां नैतिकता, बुद्धिमत्ता, और जीवन में धैर्य का महत्व सिखाने के लिए आदर्श हैं। यदि एक शिक्षक कक्षा में पंचतंत्र की कहानी "कछुआ और खरगोश" सुनाता है, तो वह बच्चों को न केवल मनोरंजन प्रदान करता है, बल्कि उन्हें यह भी सिखाता है कि धैर्य और निरंतर प्रयास सफलता के महत्वपूर्ण घटक हैं। इसके बाद, शिक्षक कहानी से जुड़े सवाल पूछकर बच्चों की समझ को जांच सकता है और उनकी आलोचनात्मक सोच को प्रोत्साहित कर सकता है। इस प्रकार, कहानी सुनाने की विधि संवादात्मक शिक्षण पद्धति का हिस्सा बन जाती है।

पारंपरिक शिक्षण विधियां बच्चों को सक्रिय रूप से शामिल करने में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए, कहानी सुनाने के बाद, शिक्षक बच्चों को उस कहानी को चित्रों या अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है। यह गतिविधि बच्चों की सृजनात्मकता और कल्पनाशक्ति को बढ़ावा देती है। Fredrickson (2004) के अनुसार, इस प्रकार की गतिविधियां बच्चों के "ब्रोडन-एंड-बिल्ड" प्रभाव को बढ़ाती हैं, जिससे उनकी मानसिक क्षमताएं और सीखने की क्षमता विकसित होती हैं। इसके अतिरिक्त, लोककथाएं बच्चों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का एक माध्यम बनती हैं। पारंपरिक शिक्षण विधियों में कहानी सुनाने के साथ-साथ उनसे संबंधित सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझाना बच्चों को उनकी सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं से परिचित कराता है। उदाहरण के लिए, "सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र" की कहानी सुनाते समय, शिक्षक भारतीय संस्कृति में सत्य और ईमानदारी के महत्व पर चर्चा कर सकता है (Sharma, 2018)। यह न केवल बच्चों में सांस्कृतिक चेतना जागृत करता है, बल्कि उन्हें अपने समाज के मूल्यों और आदर्शों को समझने में भी मदद करता है। भाषाई विकास में भी लोककथाओं और पारंपरिक शिक्षण विधियों का समन्वय अत्यंत उपयोगी है। कहानी सुनाने और सुनने के दौरान बच्चे नई

शब्दावली, भाषा की शैली, और अभिव्यक्ति की क्षमता सीखते हैं। शिक्षक कहानी सुनाने के बाद बच्चों से कहानी को अपने शब्दों में पुनः सुनाने के लिए कह सकते हैं। यह गतिविधि बच्चों की भाषा कौशल, सुनने की क्षमता और आत्मविश्वास को बढ़ावा देती है।

आधुनिक शिक्षा में भारतीय लोककथाओं और शिक्षण विधियों का योगदान

लोककथाएं केवल मनोरंजन का स्रोत नहीं हैं, बल्कि इनका शिक्षण में भी अत्यधिक महत्व है। भारतीय लोककथाएं बच्चों को न केवल नैतिक शिक्षा देती हैं, बल्कि उन्हें उनके सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों से भी जोड़ती हैं। आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में इनका समावेश बच्चों के व्यक्तित्व विकास और सामाजिक ज्ञान को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस लेख में भारतीय लोककथाओं के शिक्षण विधियों में योगदान और शिक्षा में डिजिटलीकरण के उपयोग के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की जाएगी।

- आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में लोककथाओं का समावेश: आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में भारतीय लोककथाओं का समावेश बच्चों को नैतिक शिक्षा देने के लिए एक प्रभावी तरीका है। लोककथाएं बच्चों के लिए एक सशक्त माध्यम बन सकती हैं, जो उन्हें जीवन के महत्वपूर्ण मूल्यों, जैसे ईमानदारी, साहस, सहानुभूति, और परिश्रम, को समझाने में मदद करती हैं। भारतीय लोककथाएं न केवल बच्चों को नैतिक शिक्षा देती हैं, बल्कि उन्हें अपनी सांस्कृतिक धरोहर से भी अवगत कराती हैं। यह बच्चों के मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास में सहायक होती हैं, क्योंकि वे समाज में एक आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। भारतीय लोककथाओं का शिक्षण में समावेश करने से बच्चों में सृजनात्मकता और आलोचनात्मक सोच का विकास भी होता है। कहानियों में उपस्थित पात्रों और घटनाओं के माध्यम से बच्चों को समस्याओं का समाधान ढूँढने और उनके परिणामों को समझने की क्षमता मिलती

है। इसके अलावा, इन कहानियों में व्यक्त किए गए नैतिक संदेश बच्चों को सही और गलत का अंतर समझाने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, "कछुआ और खरगोश" की कहानी बच्चों को धैर्य और निरंतरता का महत्व सिखाती है, जबकि "सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र" सत्य और ईमानदारी की मूल्य को रेखांकित करती है। इस प्रकार, भारतीय लोककथाएं न केवल बच्चों को मनोरंजन प्रदान करती हैं, बल्कि उन्हें जीवन के महत्वपूर्ण नैतिक सिद्धांतों से भी परिचित कराती हैं।

- शिक्षा में डिजिटलीकरण का उपयोग: डिजिटल युग में भारतीय लोककथाओं का उपयोग शिक्षण विधियों को और अधिक प्रभावी और आकर्षक बनाने के लिए किया जा सकता है। इंटरनेट और स्मार्टफोन के बढ़ते उपयोग ने बच्चों के लिए सीखने के तरीके को बदल दिया है। अब भारतीय लोककथाओं को विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफार्मों और एप्लिकेशनों के माध्यम से बच्चों तक पहुंचाया जा सकता है, जिससे इन कथाओं को और भी रोचक और इंटरएक्टिव बनाया जा सकता है। शिक्षा में डिजिटलीकरण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह बच्चों को आसानी से उनकी पसंदीदा कथाएं सुनने और देखने का अवसर प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, YouTube और अन्य ऑनलाइन प्लेटफार्मों पर भारतीय लोककथाओं के एनिमेटेड वीडियो उपलब्ध हैं, जो बच्चों को कहानियों के प्रति रुचि उत्पन्न करते हैं और उन्हें सुनने के साथ-साथ देख कर भी सीखने का मौका मिलता है। इन एनिमेटेड वीडियो के माध्यम से बच्चों को न केवल कथाओं का दृश्यात्मक अनुभव मिलता है, बल्कि वे पात्रों और घटनाओं के बारे में बेहतर समझ भी विकसित कर पाते हैं। यह डिजिटलीकरण बच्चों की कल्पनाशक्ति और सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करता है और उनके भाषा कौशल को भी सुधारता है, क्योंकि वे इन वीडियो के माध्यम से नई शब्दावली और संवाद शैली सीखते हैं।

इसके अलावा, कई एप्लिकेशनों और वेबसाइट्स पर लोककथाओं को इंटरएक्टिव प्रारूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस तरह के ऐप्स बच्चों को कहानियों के विभिन्न हिस्सों पर चर्चा करने, उनसे जुड़े प्रश्नों का उत्तर देने, और यहां तक कि कथाओं के पात्रों को चुनने या घटनाओं को बदलने का अवसर प्रदान करते हैं। इस प्रकार के इंटरएक्टिव अनुभव से बच्चों की सोचने की क्षमता में वृद्धि होती है, क्योंकि वे कहानी के विभिन्न कोणों को समझने और अपनी राय देने में सक्षम होते हैं। इसके अलावा, यह बच्चों को स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता का अनुभव भी प्रदान करता है, जो उनकी संज्ञानात्मक और सामाजिक कौशल को बढ़ावा देता है। डिजिटलीकरण के माध्यम से लोककथाओं का प्रचार-प्रसार शिक्षा के पारंपरिक तरीकों से कहीं अधिक प्रभावी साबित हो सकता है। जहां पहले केवल मौखिक रूप से कहानियाँ सुनाई जाती थीं, अब वे वीडियो, ऑडियो और अन्य डिजिटल प्रारूपों में उपलब्ध हैं, जो बच्चों के लिए आकर्षक और अधिक सुलभ हैं। इससे न केवल बच्चों की रुचि बढ़ती है, बल्कि उन्हें सीखने के नए तरीके भी मिलते हैं। यह बच्चों के लिए एक समग्र और बहुआयामी सीखने का अनुभव प्रदान करता है, जो उनके सर्वांगीण विकास में सहायक होता है।

- भारतीय लोककथाओं का वैश्विक संदर्भ में उपयोग: भारतीय लोककथाएं न केवल भारतीय समाज की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करती हैं, बल्कि ये वैश्विक संदर्भ में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। डिजिटलीकरण और इंटरनेट के माध्यम से इन कहानियों को न केवल भारत में, बल्कि पूरी दुनिया में प्रचारित किया जा सकता है। भारतीय लोककथाएं न केवल भारतीय समाज के मूल्य और परंपराओं को आगे बढ़ाती हैं, बल्कि यह सार्वभौमिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं का भी प्रतिनिधित्व करती हैं। इन कथाओं में नायक की यात्रा, संघर्ष, और विजय के तत्व होते हैं, जो न केवल भारतीय समाज, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों के बच्चों को समान रूप से प्रभावित कर सकते हैं। भारतीय लोककथाओं का वैश्विक संदर्भ में महत्व इस

तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि इन कथाओं में नैतिक शिक्षा, मानवीय मूल्यों, और सामाजिक आदर्शों को एक सरल और रोचक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए, पंचतंत्र की कहानियां बच्चों को साहस, दोस्ती, और नीति के महत्वपूर्ण पाठ सिखाती हैं, जो पूरी दुनिया में समान रूप से समझे जा सकते हैं (Sharma, 2018)। इसी तरह, "सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र" की कहानी सत्य, ईमानदारी, और बलिदान के महत्व को दर्शाती है, जो वैश्विक स्तर पर बच्चों को नैतिक शिक्षा देने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है (सिंह, 2015)। इन कथाओं के माध्यम से न केवल भारतीय संस्कृति, बल्कि मानवता की साझा समझ और आपसी सम्मान को बढ़ावा दिया जा सकता है।

इसके अलावा, भारतीय लोककथाओं में नायक की यात्रा और संघर्ष के विषय अक्सर अन्य संस्कृतियों की कहानियों से समान होते हैं। उदाहरण के लिए, "रामायण" और "महाभारत" जैसी महाकाव्य कथाएं, जो भारतीय संस्कृति का अहम हिस्सा हैं, संघर्ष और विजय के तत्वों को साझा करती हैं, जो दुनिया भर के बच्चों को समान रूप से आकर्षित करती हैं (Raghavan, 2019)। यह भारतीय लोककथाओं को वैश्विक शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न हिस्सा बनाने का अवसर प्रदान करता है, जिससे बच्चों को विभिन्न संस्कृतियों, परंपराओं, और मानवता के बारे में सीखने का मौका मिलता है। लोककथाओं के डिजिटल स्वरूप में परिवर्तन और प्रचार से इनका वैश्विक प्रभाव और भी बढ़ सकता है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से भारतीय लोककथाओं को विभिन्न भाषाओं में अनुवादित किया जा सकता है और विभिन्न देशों के बच्चों तक पहुँचाया जा सकता है। इसके अलावा, बच्चों के लिए डिजिटलीकरण के माध्यम से इंटरएक्टिव और शैक्षिक सामग्री विकसित की जा सकती है, जिससे उनकी शिक्षा को और अधिक प्रभावी और आकर्षक बनाया जा सकता है (गुप्ता व देसाई, 2020)।

## निष्कर्ष

भारतीय लोककथाएं और पारंपरिक शिक्षण विधियां बच्चों के नैतिक, मानसिक और सामाजिक विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये कहानियां और विधियां बच्चों को जीवन के मूलभूत मूल्य, जैसे सत्य, ईमानदारी, धैर्य और विवेक का महत्व समझाने में सहायक होती हैं। इनके माध्यम से बच्चे न केवल सही और गलत के बीच अंतर करना सीखते हैं, बल्कि जिज्ञासा, सृजनात्मकता और आलोचनात्मक सोच का भी विकास होता है। इसके साथ ही, ये बच्चों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ती हैं, जिससे वे अपनी परंपराओं, रीति-रिवाजों और समाज के आदर्शों को बेहतर तरीके से समझ पाते हैं। पारंपरिक शिक्षण विधियां और लोककथाएं बच्चों को समाज में अपनी भूमिका पहचानने में सहायता करती हैं और उनमें सामुदायिक भावना को प्रोत्साहित करती हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इनका समावेश, तकनीकी और वैश्विक ज्ञान के साथ संतुलन बनाते हुए बच्चों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित कर सकता है। यह समावेश बच्चों के बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास में योगदान देने के साथ-साथ उनकी व्यक्तिगत और सामाजिक जिम्मेदारियों को समझने में भी मदद करेगा। भारतीय लोककथाओं और पारंपरिक शिक्षण विधियों का महत्व समय के साथ और बढ़ता जा रहा है, और इन्हें आज की शिक्षा प्रणाली का अभिन्न हिस्सा बनाना बाल शिक्षा के भविष्य के लिए आवश्यक है।

*****

## संदर्भ


- Seligman, M. E. P. (2002). *Authentic happiness*. New York: Free Press.
- Fredrickson, B. L. (2001). The role of positive emotions in positive psychology: The broaden-and-build theory of positive emotions. *American Psychologist, 56*(3), 218–226.https://doi.org/10.1037/0003-066X.56.3.218
- Sharma, R. (2018). Storytelling in Indian education: A traditional approach to modern learning. *International Journal of Educational Research, 7*(4), 45-58.

- Singh, P. (2020). The relevance of Panchatantra in modern education. *Journal of Cultural Studies, 12*(2), 89-105.
- Mehta, S. (2019). The role of folk tales in children's moral development. *Asian Journal of Education and Psychology, 14*(1), 33-49.
- Gupta, R., & Desai, S. (2020). Digital transformation of folk narratives in the global era. *Global Education Review*, 7(4), 124-137.
- Raghavan, V. (2019). The epic journey of Indian mythology in global storytelling. *Indian Journal of Cultural Studies,* 15(2), 45-60.
- Sharma, P. (2018). Panchatantra and its role in moral education. *Journal of Indian Education*, 32(3), 20-32.
- Singh, S. (2015). Folk tales and their significance in Indian culture. *Indian Folklore Review*, 10(1), 5-18.
- Fredrickson, B. L. (2004). The broaden-and-build theory of positive emotions. *Philosophical Transactions of the Royal Society B: Biological Sciences*, 359(1449), 1367–1377.https://doi.org/10.1098/rstb.2004.1512
- Sharma, R. (2018). Indian cultural heritage and moral values. *Heritage Publications*.
- Singh, A. (2015). Folktales and their role in education. *Educational Insights*.
- गुप्ता, आर. (2020). भारतीय लोककथाओं का नैतिक शिक्षा में योगदान. *भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका*, 12(3), 45-50.
- शर्मा, पी. (2018). बाल विकास में पारंपरिक शिक्षण विधियों की भूमिका. *शैक्षिक अध्ययन*, 10(2), 34-39.
- सिंह, के. (2015). भारतीय लोककथाओं का सांस्कृतिक महत्व. *संस्कृति और शिक्षा पत्रिका*, 8(1), 20-25.
- सिंह, A. (2015). लोककथाएं और उनका समाज पर प्रभाव. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- शर्मा, R. (2018). भारतीय लोककथाओं का नैतिक शिक्षा में योगदान. शिक्षा और समाज, 12(3), 45-58.

शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 105-143
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

अनुभव

# रूस की मेरी यात्रा

केदारनाथ अग्रवाल

गत 11 मई को पालम एयरपोर्ट से लगभग 9.15 बजे, सबेरे मैं अपने अन्य साथियों के साथ एरोफ्लोट से सोवियत संघ की राजधानी मास्को के लिए उड़ा। यह मेरी पहली हवाई-यात्रा थी, इसलिए एक हल्की-सी परेशानी और घबराहट महसूस कर रहा था कि ऐसा न हो कि कोई दुर्घटना हो जाए और मैं फिर अपनी भारत-भूमि को न लौट सकूँ। लेकिन वर्षों की मनोकामना पूरी हो रही थी, इसलिए मेरे अंदर उमंग और उत्साह उछाल ले रहा था और उस उछाल में शंका की एक हल्की-सी छाया झलमला जाती थी। हवाई जहाज़ एक बड़ी लंबी-सी मछली की तरह था, जिसके पेट के भीतर हम और दूसरे यात्री बैठ गए थे। इस पेट में एक तरफ़ तीन आराम कुर्सियों की पंक्तियाँ, आगे-पीछे लंबान में लगी थीं। बीच में एक काफ़ी चौड़ी गैलरी थी, जिसमें लोग आ जा सकते थे और जिसमें यान की परिचारिकाएँ ट्राली में खाने-पीने का सामान रखकर ले आती और वितरण करने के बाद वापस चली जाती थीं। इस गैलरी की दूसरी बग़ल में आराम कुर्सियों की वैसी ही आगे-पीछे, दो-दो की पंक्तियाँ थीं। हम लोगों के बक्से वहाँ पहले ही पहुँचकर एक प्रकोष्ठ में अलग रख दिए गए थे। हम लोगों में से लगभग हरएक के पास अपना-अपना ब्रीफकेस व किसी-किसी के पास एक-एक हैंड बैग भी था, जिसमें सुविधा की कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं। वे सब कुर्सियों के पास ही रख लिए गए थे। यान के अंदर का वातावरण शांत और प्रिय था। न कोई हल्ला था, न कोई हलचल थी, लोग अपनी-अपनी जगह आराम से बैठे थे। यात्रियों में औरतें भी थीं, बच्चे भी थे और पुरुष भी थे। दोनों तरफ़ की कुर्सियों के ऊपर, यान की छत से कुछ नीचे, सामान रखने के लिए टाँड़ें बनी थीं और ठीक कुर्सियों के ऊपर यान की छत में पेंच लगे हुए थे; जिन्हें घुमा देने से सीटों पर ठंडी हवा आने लगती थी और बंद कर देने से रुक जाती थी। हर बग़ल वाली सीट के पास ही दोनों तरफ़ गोलाकार शीशे की पारदर्शी खिड़कियाँ लगी थीं, जिनसे यात्रीगण

बाहर का दृश्य बराबर देखते रह सकते थे। हर खिड़की के पास ही एक हल्के नीले रंग का छोटा पर्दा लगा था, जिसे खिसका देने पर खिड़की का शीशा उसी रंग का हो जाता था और तब बाहर का दृश्य भी उसी के हल्के रंग से रंगा हुआ दिखाई देने लगता था। हरएक कुर्सी में एक-एक बेल्ट लगी हुई थी, जिसे उड़ने से पूर्व और उतरने के पहले, यात्री को अपनी कमर में बाँध लेना पड़ता था। उड़ने से पहले यान-परिचारिका एक ट्रे में लेमन-ड्राप्स और टॉफ़ी लाती थी और हर-एक यात्री को देती थी, जिसे उसे खाना पड़ता था, ताकि उड़ने और उतरने के बीच कोई मानसिक कष्ट न हो या कि मिचली वग़ैरह न आए।

यान उड़ने को हुआ, तो उसका शरीर चालू हुए इंजन की धकधकाहट से हल्का-सा थरथराने लगा और हल्की-सी आवाज़ यान के अंदर पहुँचने लगी और हम सब यात्रियों को वह आवाज़ सुनाई देने लगी; लेकिन वह ऐसी नहीं थी कि उसके सुनते रहने से कोई कष्ट हो या कान सुन्न हो जाएँ। मेरे साथ के किसी यात्री ने आवाज़ से बचने के लिए कान में न तो अपनी उँगली लगाई, न रुई की कोई ठेपी। यान जहाँ खड़ा था, वहीं वह कुछ देर तक धड़धड़ाता रहा और फिर उसके बाद ज़मीन पर उसके पहिए सरकने लगे और वह बड़ी मछली, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी जैसे हवा के सागर में भीतर घुसने लगी। वहाँ से इस तरह चलकर और थोड़ी दूर आकर वह मछली एक जगह फिर रुक गई और अब अधिक वेग से थरथराने लगी। यान का इंजन वेग से चालू किया गया और वह अपनी पूरी ताक़त से ज़ार पकड़ रहा था। कुछ मिनटों के बाद यान वहाँ से आगे चला और अब उसकी गति तेज़-से-तेज़ होती गई। कुछ दूर जाकर उसके पहिये ज़मीन से ऊपर उठे और वह, गन्तव्य मार्ग की ओर हवा में सरसराता हुआ ऊपर उठता चला गया। मैं खिड़की के पास बैठा अचरज से भरा था। इसलिए बराबर खिड़की के बाहर का दृश्य देखता ही रहा। दिल्ली नीचे दूर होती जा रही थी, बड़ी से छोटी होती जा रही थी और फिर थोड़ी देर में यान के ऊँचाई पा लेने पर ग़ायब भी हो गई।

मुझे अपना गाँव याद आया, अपने पुरजन व परिजन याद आए। मेरा बाँदा मुझे याद आया। लड़कपन में लढ़ी पर की हुई यात्राएँ याद आईं। इक्का, रिक्शा, ताँगा और मोटर की मेरी छोटी-बड़ी यात्राएँ और रेल की लंबी यात्राएँ भी दिमाग़ में कौंध गईं। यह सब शायद इसलिए हुआ, क्योंकि इन्हीं सवारियों से मेरा जीवन जुड़ा हुआ था और अब मैं इन्हें छोड़कर एक बड़े वेगवान वायुयान पर चढ़ा दूर देश की यात्रा पर जा रहा था, जहाँ मेरा कोई स्वजन नहीं था; मेरा कोई मित्र नहीं था और हो सकता है कि जहाँ मैं अकेला महसूस करता। इसके बावजूद भी जब यान बादलों की परत भेदकर उनसे ऊपर उठ गया और धरती का धरातल पूर्णतया

लोप हो गया और यान के दोनों तरफ़ ऊपर और नीचे भी आकाश और हवा ही रह गई, तो मुझे यह दृश्य देखने में आनंद आने लगा।

मैंने देखा लगातार बराबर तरह-तरह की आकृतियों के बादल फैले-बिखरे, बैठे, खड़े इकट्ठा हैं और उनका सिलसिला अनंत और अछोर है। उन बादलों की आकृतियाँ बहुत कुछ कभी-कभी क्या ज़ियादातर ही बूढ़े आदमियों की व जवानों की व औरतों बच्चों की लगती थीं। वे कहीं सभा में बैठे सामूहिक संलाप में संलग्न मिले, तो कहीं लेटे और पसरे, एक-दूसरे से आलिंगित और आलिप्त मिले। कोई पगड़ी बाँधे था, तो कोई शरीर पर लंब चोग़ा पादरियों जैसा पहने था। औरतें, तरह-तरह के केशविन्यास किए हुए, मुलायम, स्निग्ध बादलों के ही खुले और अधखुले वस्त्र पहने थीं। कहीं कहीं तो ऐसा भी लगा कि दूध के समुद्र में आर-पार मलाई जम गई है और कहीं-कहीं ऐसा भी लगा कि धुनी हुई मुलायम रुई के बड़े-बड़े ढेर ज्यामितिक ढंग से, आप-ही-आप इकट्ठा हो गए हैं। मेरे कवि मन को यह सब बहुत भला लगा और मैं बराबर इससे प्रभावित होता रहा। मेरी कल्पना काम करती रही और मैं बादलों के देश में निःसंकोच बिहार करता रहा। मैं यह भूल गया कि मैं यान में हूँ और यान से बाहर नहीं हूँ। मैं यह महसूस करता रहा कि मैं उनके पास पहुँच गया हूँ और मैं उन्हीं के देश का सौंदर्य अपनी इन्द्रियों से आत्मसात् कर रहा हूँ। मुझे कालिदास याद आए, निराला और पंत याद आए। शेली भी याद आए, उनकी अमर रचनाएँ याद आईं। लेकिन मुझे ऐसा लगा कि जैसे इन कवियों ने भी ऐसे दृश्य नहीं देखे जैसे दृश्य मैंने देखे हैं। मुझे आजतक कोई ऐसी कविता नहीं मिली, जिसमें कवि स्वयं बादलों के परिवार का सदस्य होकर उन्हीं के बीच जी रहा हो। मेरी अनुभूतियाँ नितान्त भिन्न थीं। मैं बादलों का कुटुंबी हो गया था, बादलों की हर एक भंगिमा को देख रहा था और वह क्या कर रहे हैं या कि उनका मनोजगत् कैसा है, यह सब जान रहा था और इस सबसे मुझे बड़ा आत्मसन्तोष और सुख मिल रहा था। ऐसी थी यह बादलों के साथ जी रही मेरी ज़िंदगी कि मैं कविता लिखना भूल ही गया और अब यह इच्छा हुई कि मैं बादलों की कविता लिखूँ।

यान को कहीं रुकना नहीं था। सीधे मास्को पहुँचना था। बीच-बीच में, कभी कहीं, नीचे होकर जब वह उड़ता था, तब ज़मीन दिखाई दे जाती थी और कई बार तो ऐसा लगा कि ज़मीन में हरे-हरे खेत बिछे हैं और मकान तो ऐसे दिखे कि जैसे किसी ने ज़मीन पर पटिया रख दी है और नदियाँ पतली, बहुत पतली, नालियों की लकीरों-सी लगीं। रास्ते कमरबंद की

तरह पतले दिखे। मुझे मार्ग में कहीं कोई जानवर या आदमी नीचे चलता हुआ नहीं दिखाई दे सका।

यान में हमें यान परिचारिका ने पहले मिनरल वाटर व शर्बत दिया, जिसे हम लोगों ने बड़े चाव और रुचि से पिया। फिर दोपहर का भोजन, ट्राली में भरकर वह लाई और उसने हरएक को दिया। हम लोगों ने अपने आगे सीट की पीठ में लगी छोटी-छोटी मेज़ों को अपनी तरफ़ खोला और उन्हीं पर अपने भोजन की ट्रे रक्खी। मैं निरामिष भोजी था। इसलिए मैंने माँस नहीं लिया। मुझे खाने में गोल डबल रोटी, ब्राउन ब्रेड के कतरे, मक्खन और पनीर, खीरा और हरी पतली सब्ज़ी का डण्ठल, नमक व मिर्च के छोटे पैकेट्स, शर्बत का छोटा गिलास, मिनरल वाटर की बोतल और पैकेटबंद छुरी-काँटे मिले। मैंने मज़े से खाया और खाते-खाते बाहर के दृश्य भी देखता रहा। मेरी बग़ल में नवभारत टाइम्स के न्यूज एडीटर श्री हरिदत्त शर्मा बैठे थे। वे भी निरामिष भोजी थे। उन्होंने भी यही किया। उनके बग़ल में श्री ग़ुलाम रब्बानी ताबाँ बैठे थे। वे माँसाहारी थे। उन्होंने अपना भोजन स्वाद से किया। हम लोगों के साथ दिल्ली की कु० शांता गाँधी व मद्रास के श्री चोखलिंगम व केरल के उपन्यासकार शंकर पिल्लई व हिंदी के लेखक और कवि श्री उपेंद्रनाथ अश्क व कलकत्ते के श्री चिन्मोहन सेहानबीस व कु० चारु सक्सेना थीं। उन लोगों ने भी अपनी-अपनी पसंद का अपना-अपना भोजन किया। मैं नहीं जानता कि इन लोगों के मन में क्या हो रहा था।

यान की गति तेज़ थी। दूरी छोटी होती जा रही थी। मास्को नज़दीक आनेवाला था। दोपहर के तीन या साढ़े तीन बजे के लगभग हमारा यान मास्को पर उतरा। अब एयरपोर्ट पर पाँच बजे शाम तक हम लोगों के काग़ज़-पत्तर की जाँच-परख होती रही और मैं अब पिछले दृश्य को भूलकर मास्को के एयरपोर्ट पर सोवियत संघ के बारे में सोचने लगा। मुझे उसका इतिहास याद आया। उसकी अक्टूबर-क्रांति याद आई। मुझे महान लेनिन याद आए और उनकी प्राणलेवा संकट की घड़ियाँ याद आईं, जब वहाँ के निवासी जार के ख़िलाफ़, स्थान-स्थान पर लड़ाई लड़ रहे थे और पुरानी भू-दासता व सामंतवाद को धूलधूसरित करके समाजवाद की स्थापना के लिए प्राण दे रहे थे। मैं अंदर से रोमांचित हो गया था और उस दिन वहाँ पहुँचकर अपने को बड़ा धन्य समझने लगा था। मुझे उस देश के दर्शन मिलेंगे, जिसे देखने की लालसा दिन-पर-दिन तीव्र होती जा रही थी। यह दिन मेरे लिए बड़े गौरव का दिन था। गौरव का दिन इसलिए था कि सोवियत संघ की वजह से आज दुनिया में शोषण समाप्त करने

के लिए हर तरह की लड़ाई लड़ी जा रही है और हर एक देश में मनुष्य स्वाधीन होकर अपने विकास की ओर प्रयाण करने के लिए तत्पर है।

वहाँ से हम, कार द्वारा, रूसिया होटल ले जाए गए। यहीं हमें ठहराया गया। मैं उसके कमरा नं० 2254 में ठहरा। कमरे में टेलीविज़न सेट, रेडियो लगा था। वह साफ़-सुथरा व सुसज्जित था। साथ में बाथरूम था, जहाँ ठंडे व गर्म पानी का प्रबंध था। हम लोगों ने चाय-काफ़ी आदि पी, फिर रात का भोजन किया। इसके पहले हम लोग मास्को शहर शाम को देख आए थे। मास्को और लुलुम्बा विश्वविद्यालय बाहर से देखा, नगर की सड़कों पर इधर-उधर कई जगह घूमे। नगर की सफ़ाई व व्यवस्था देखकर मैं तो बहुत प्रभावित हुआ। सड़कों के इधर-उधर ही वृक्षावली लगी थी। वृक्षावलियों के बीच से आदमियों के चलने का पथ बना था, बेंचें पड़ी थीं और कहीं कोई गंदगी नहीं थी। जो लोग आते-जाते दिखे वे संतुष्ट और प्रसन्न दिखे। नगर में, कहीं कोई तनाव या उदासी नहीं दिखी। मुझे तो वहाँ की इमारतें तक सहृदय लगीं और ऐसा लगा जैसे बड़ी शान से कह रही हों कि हम दूसरे असमाजवादी देश के नगरों की ऊँची इमारतें नहीं हैं कि अपने यहाँ के आदमियों को निगल जाएँ, वह खो जाएँ और उनका व्यक्तित्व दूसरों के दबाव से दब जाए। वे यह भी कह रही थीं कि हम अपने नगरवासियों का स्वागत करती हैं। उन्हें सुख-सुविधा व आराम देती हैं और उन्हें अपनी छाया में लेकर उनके दुःख-दर्द मेटती हैं और उन्हें रोज़ कर्मण्य जीवन जीने के लिए अपने से बाहर खेतों, फैक्टरियों, मदरसों, अनुसंधान शालाओं, दूकानों और कामकाज के विभिन्न स्थलों को भेजती हैं कि उन्हें युद्ध की विभीषिका फिर से न देखनी पड़े और वे संसार में रहकर शांति से समानता के आधार पर जीवनयापन कर सकें। मैं बड़ा खुश हुआ।

मास्को देखकर मैं प्रभावित हुआ और मैंने यह कविता लिखी

देखा मास्को

जनता का जीवंत नगर,
सबके लिए खुला,

दगादार के लिए-दुष्ट के लिए बुरा,
सहज बंधु के लिए सनेही,

सुखकर सगा, भला।
मानव,

गले कहीं दुनिया में,
यहाँ न गलता,

शोषण चले कहीं
दुनिया में,

यहाँ न चलता,
अच्छी, सच्ची, राजनीति है

पूरी पक्की,
जन-जन की हो रही इसी से

ख़ूब तरक़्क़ी।

फिर 12 मई को सबेरे का नाश्ता करके हमलोग मास्को के एयरपोर्ट पर आए। यहीं हम फिर 10 बजे दिन को ऐरोफ्लोट पर चढ़े और लेनिनग्राद पहुँचने के लिए उड़े। धूप चमक रही थी। आसमान का नीलापन श्वेताम्बरी हो रहा था। एक घंटे की यात्रा के बाद हमलोग लेनिनग्राद के एयरपोर्ट पर पहुँचे। एयरपोर्ट पर यहाँ मास्को से अधिक ठंडक थी। मुझे गर्मकोट पहने रहने पर भी अंदर तक ठंडक मालूम हुई। लेकिन वह भी सह्य थी। इसलिए मैंने परवाह नहीं की। हमलोग कारों द्वारा एस्टोरिया होटल पहुँचाए गए। कारें सरकार की होती हैं। रास्ते में काफ़ी समय लगा। धूप वहाँ भी थी। सड़कें साफ़-सुथरी, लंबी-चौड़ी चमचमा रही थीं। दोनों तरफ़ लंबे-लंबे चले गए पेड़ों की पंक्तियाँ, झीनी-झीनी छाया ज़मीन पर छोड़ रही थीं। बच्चे, औरतें व आदमी आते-जाते प्रसन्न मुद्रा में दिखे। यहाँ की इमारतें भी ऊँची और भव्य तथा कई मंज़िलों की हैं। पत्थरों की बनी हैं। मैं एस्टोरिया होटल के कमरा नं. 512 में श्री हरिदत्त शर्मा के साथ ठहरा। शाम को 4 बजे से 6 बजे तक विंटर पैलेस देखा। यहाँ 1500 कमरे हैं, म्यूज़ियम है, कमरे बड़े हैं। देखते-देखते हैरत हुई। मुझे इस नगर की सांस्कृतिक अभिरुचि का गहरा एहसास हुआ, जब मैंने विंटर पैलेस के भीतर का म्यूज़ियम देखा रूसी लोग अपनी

तमाम तरह की भौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों की ऐसी देखरेख करते हैं और उन्हें ऐसे सुरक्षित रखते हैं कि जैसे वे उन्हें प्राण से भी अधिक प्यारी हैं। यही बात रह-रहकर मुझे मोह रही थी और मैं उनके प्रति मन-ही-मन कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। जो लोग यह कहते हैं कि रूसी लोग प्राचीन के प्रति अत्यन्त अनुदार हैं और वे प्राचीन सभ्यता की समस्त देन को विनष्ट कर देते हैं और वे निरंकुश और निर्मम हैं, उनकी यह बात मुझे सरासर ग़लत मालूम हुई। रूसी लोग इतिहास को और उसके प्रत्येक चरण के चिह्नों को अपने लिए सुरक्षित रखते हैं, ताकि वे आज भी यह कह सकें कि कैसे, किन-किन परिस्थितियों से होकर आज वे समाजवाद को अपने यहाँ अवतीर्ण कर सके। मुझे याद है कि नाज़ी लोग या अमरीकी फ़ौजी लोग या कि दूसरे असमाजवादी देशों के फ़ौजी शासक जब जहाँ अपने पाँव रखते हैं, तब वहाँ की सभ्यता और संस्कृति के समस्त इतिहास की उपलब्धियों को चकनाचूर कर देते हैं। इसलिए मुझे यह देखकर विश्वास हुआ कि वे जहाँ और जब भी गए होंगे या जाएँगे, उन्होंने वहाँ भी उसकी ऐतिहासिक उपलब्धियों को नष्ट न किया होगा और न वे करेंगे आगे भी।

सोवियत संघ की राजनीति समाजवादी राजनीति है, इसलिए वह सही अर्थों में मानववादी है और सच ही जनतान्त्रिक स्वभाव की है।

इस विंटर पैलेस यानी शिशिर प्रासाद पर 26 अक्टूबर को क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था और साथ ही चोद्रोवंस्की को इसका कमान्डेंट नियुक्त किया गया था, जिसके तुरंत ही बाद वह लेनिन से मिलने स्मोल्नी गए थे। यह प्रासाद मुझे प्रभावित कर सका और मैंने अपनी नोट बुक में उसे देखकर ही लिखा : Simply grand! इसे भीतर-बाहर से देखता रहा और देखते-देखते उन दिनों का इतिहास सोचता रहा और इतिहास को सोचकर तब की गई क्रान्ति का महत्त्व आँकता रहा। अब यह प्रासाद रूस की सारी जनता का प्रासाद है। इसे देखने देश-विदेश की जनता आती है और देख-देखकर दाँतों तले उँगली दबाकर चकित रह जाती है। शाम के छः बज चुके थे। प्रासाद बंद होने जा रहा था। इसलिए उसे देखकर फिर होटल वापस आया। मैंने देखा कि आठ बजे रात को भी सूरज पश्चिमी आसमान में काफ़ी ऊँचे चमक रहा था। रात दस बजे सूरज सोया था। रात होटल में सोता रहा और जब तीन बजे सुबह उठा, तब देखा कि सूरज का प्रकाश फैल चुका था।

दूसरे दिन, तेरह मई को दस बजे दिन, होटल से बस से चला और PESKEREVSKOE-MEMORIAL देखने पहुँचा। यह 26 हेक्टेयर क्षेत्रफल में था। प्रवेश करते ही सामने दिखाई दी विशाल खड़ी हुई, प्रतीकात्मक माँ की मूर्ति। बताया गया कि यह 1942 के वीरों का समाधिस्थल है। यहाँ लगभग पाँच लाख आदमी दफ़न हुए थे। यहीं पर कवयित्री ओल्गा बेल्पास भी दफ़न हुई हैं। मैंने देखा कि तमाम बच्चे आए थे और साथ में फूल-मालाएँ भी लाए थे। वे सब समाधियों पर मालाएँ चढ़ा रहे थे। समाधियों पर हँसिए-हथौड़े अंकित थे। यहाँ का वातावरण मर्मस्पर्शी था। करुणा से द्रवित प्रत्येक दर्शक शांतभाव से वीरों को नमन कर रहा था। मैं भी सन् '42 के रक्त-पात और तब की की गई नृशंस-बर्बरता को देख-देखकर क्षण-प्रति-क्षण विचलित होता रहा और हत्या करनेवालों को कोसता रहा और मरनेवालों की याद कर-कर उनको अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता रहा। सोवियत सरकार ने इस स्थल को सुरक्षित करके आनेवाली पीढ़ियों को यह जता दिया है कि युद्ध कितना भयंकर और विनाशकारी होता है कि फिर से उसकी पुनरावृत्ति कोई न करे। टेलीविज़न वाले वहाँ आए हुए थे, उन्होंने भी प्रसारण के लिए उस समय चित्र लिए।

साढ़े ग्यारह बजे दिन को हम लोग Smolni (स्मोल्नी) पहुँचे। यही वह स्थान है, जहाँ रात के सवा दो बजे चोद्रोवस्की लेनिन से मिले थे। तब लेनिन कमरे में काम करते हुए नई आज्ञाप्तियों के मुसव्विदे लिख रहे थे। इसके बाद यहीं सोवियतों की दूसरी काँग्रेस की बैठक हुई और मज़दूरों, सैनिकों तथा किसानों के नाम लेनिन ने एक अपील लिखी, जो काँग्रेस ने स्वीकार की। उस अपील का एक अंश इस प्रकार है —

'मज़दूरों, सैनिकों और किसानों के बहुमत की इच्छानुसार पेत्रोग्राद में हुए मज़दूरों और नगर-सेना के विजयी विद्रोह का समर्थन पाकर काँग्रेस सत्ता अपने हाथ में लेती है।... अस्थायी सरकार का तख़्ता उलट दिया गया है... सैनिकों, मज़दूरों और कर्मचारियों! क्रान्ति और जनवादी शांति का भाग्य तुम्हारे हाथों में है—क्रांति ज़िंदाबाद।' लेनिन ने युद्ध को मानव जाति के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध घोषित किया था। यहीं लेनिन ने भूमि-संबंधी वह आज्ञप्ति निकाली थी, जिसके अनुसार सारी भूमि की स्वामिनी जनता मानी गई और यहीं लेनिन के नेतृत्व में दूसरी काँग्रेस ने सरकार बना दी और जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी को देश का शासन सौंपा। पहले यहाँ सम्भ्रन्ति और प्रतिष्ठित कुटुम्बों की औरतों के पढ़ने के लिए कॉलेज था। यह 1808 में बनी इमारत है। यहीं ब्रोत्स्की चित्रकार की सन् 1927 में बनाई हुई लेनिन की आदमक़द, रंगीन तस्वीर देखने को मिली। तस्वीर में लेनिन खड़े हैं, अपनी सहज-

साधारण गरिमा के साथ और उनके पीछे बह रही है एक नदी। दीवार पर पूरा संविधान सुनहरे अक्षरों में लिखा है। इस तस्वीर को देखते-देखते यही सोचता रहा कि कितना महान् था लेनिन, जो अपनी जनता के लिए ही रात-दिन जीता-जागता, सोचता-विचारता और क्रान्ति की निश्छल अगुआई करता था। काश, ऐसे नेता हमें भी हमारे देश में मिलते हमारा देश धन्य होता।

फिर मैं वहाँ से लेनिन का एक दूसरा घर देखने गया। वह भी लेनिन का म्यूज़ियम बना दिया गया है। यहाँ लेनिन का रेकार्डेड भाषण, उन्हीं की आवाज़ में सुना गया। मैं उसे समझ तो नहीं सका, लेकिन स्वरों के आरोह और अवरोह और व्यंजनों के प्रवाह से मुझे यह लगा कि उनके भाषण में उतार-चढ़ाव नाममात्र को था और वह कोई दो-टूक बात कर रहे थे, इस म्यूज़ियम को देखकर बहुत-सी और बातें मालूम हुईं कि लेनिन यहाँ कैसे रहे और किसके साथ व कब तक रहे।

वहाँ से होटल आया। खाना खाया, फिर सवा पाँच बजे 'फ्रेंडशिप पैलेस' देखने के लिए गया। यहाँ इंडो-सोवियत कल्चरल सोसाइटी का स्वामित्व है। लेनिनग्राद की म्यूनिसिपैलिटी ने, दूसरे महायुद्ध से नष्ट हो जाने पर, इसका पुनरुद्धार कराया था और इसे उक्त सोसाइटी को सौंप दिया था। इसमें, नष्ट होने के पहले, सोने का तमाम काम दीवालों पर अंकित था। युद्ध के बाद चौदह किलो सोना लगाकर म्यूनिसिपैलिटी ने उसे वैसा ही रूप दे दिया, जैसा पहले था। यहीं कई लोगों से बातचीत हुई। चाय-पानी हुआ। यहीं मिले: (एक) विक्तर बालिन, प्राध्यापक भारतीय भाषा-विभाग, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय (दो) रूदोल्फ वी० वाराबनोब, 1920 x11 लेनिनग्राद फोण्टैन्का-21, (तीन) पेत्तचेको वाई०, ओरियंटल फ़ैकल्टी, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय, लेनिनग्राद। साहित्य पर और कला पर बातें होती रहीं। यहीं पेत्तचेंको महोदय ने मुझे एक किताब दिखाई। उसमें लेनिन के ऊपर लिखी मेरी कविता का रूसी अनुवाद छपा था। अपना नाम तो मैंने पढ़ लिया, लेकिन कविता नहीं पढ़ सका। तब उन्होंने उसे पढ़ा और अर्थ बताया, निश्चय ही वह मेरी थी। यह बड़ी सुखद बात हुई। मैं प्रसन्न हुआ कि इस दूर विदेश में भी मेरी कविता को सराहा गया और मेरे आने पर पेत्तचेंको महोदय ने मुझे पढ़कर सुनाया। काव्य में ऐसी रुचि बहुत कम लोगों में होती है। लेनिनग्राद में काव्य कला, साहित्य और संस्कृति के प्रति निश्चय ही अत्यधिक अभिरुचि मिली। यहाँ भी टेलीविज़न के लोग साथ आए थे और अपना काम कर रहे थे। हम लोगों की तस्वीरें खिंचती रहीं। यहीं प्रसिद्ध रूसी लेखक टॉलस्टाय के परिवार की एक महिला ने आकर हिंदी में मेरा

अभिवादन किया और अपना परिचय दिया और मेरी कविता में अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। वे हिंदी बोल रही थीं। अच्छी-ख़ासी तंतरुस्त महिला हैं रंग गेहुँआँ है। देखने में यूरोपियन नहीं लगती। स्वभाव से शालीन और मर्यादित। मुझे इनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं इन्हें देखकर उसमें टॉलस्टाय की मूर्ति देखता रहा।
फिर रात आरइ और होटल में सोया —

चौदह मई को साढ़े दस बजे दिन होटल से दास्तोवस्की स्ट्रीट गए। यहाँ उनका घर था। यह रूस के महान् उपन्यासकारों में हैं, किराए के मकान में रहते थे। लेनिनग्राद में ही कई घरों में किराए पर रहे थे। यह घर उन्हीं में से एक था। इसी घर में उनके नाम का म्यूज़ियम है। यह म्यूज़ियम दो भागों में है। एक भाग में उनका साहित्य संगृहीत है, दूसरे भाग में उनके कॉलेज और बचपन के दिन बीते थे। वे 13 अक्टूबर, 1821 को पैदा हुए थे। इनकी माँ, मास्को के एक व्यापारी की पुत्री थीं, जिनका देहावसान 1837 में हुआ। इनके पिता ने इन्हें पेत्रोग्राद के इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ाया। लेकिन दास्तोवस्की को, उनकी प्रतिभा ने, इंजीनियरी से हटाकर उपन्यासकार बनाया और वे मानवमन की अतल गहराइयों के सूक्ष्म चित्रण के विश्वविख्यात उपन्यासकार हो गए। इनके उपन्यासों में अपराधी वृत्तियों के नर-नारियों के मनोजगत् का बड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। इनके उपन्यासों के पात्रों से तब के आदमियों के जीवनवृत्त का आकलन मिलता है। यह मालूम होता है कि उस समय के गए-गुज़रे लोग, अपने समाज में, कैसे जीवन यापन करते थे और किस बुरी तरह से सव्त्रस्त और उपेक्षित रहते थे और इसपर भी किन-किन तरीक़ों से ज़िंदगी जीते और अपनी आयु अंधकार को समर्पित करते थे। इसी म्यूज़ियम में उनकी पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ देखीं। छपी हुई उनकी पुस्तकें देखीं। तब के छपे हुए अख़बारों में उनके बारे में टिप्पणियाँ देखीं। उनके चित्र भी देखे। उनके उपन्यास के पात्रों के, तब के बनाए गए चित्र भी देखे। इन्हें देखकर कुरूपता और विरूपता का एहसास हुआ और साथ-ही-साथ यह भी एहसास हुआ कि दास्तोवस्की स्वयं इनको चित्रित करने के लिए कितना कुछ नहीं, इनके साथ मिल-मिलाकर वैसा ही भोगते रहे होंगे। शायद कोई दूसरा यह काम नहीं कर सकता था, अगर दास्तोवस्की न होते, तो ऐसे उपन्यासों के लिखे जाने की संभावना कम ही होती और अगर होती भी, तो उनके बहुत बाद होती। यहाँ एक सम्मति-पुस्तिका रखी हुई थी। इसमें आए गए लोग अपनी प्रतिक्रिया अंकित कर जाते थे। मैंने भी इसमें हिंदी में ही यह नोट किया—'मानव-मन की गहराइयों में उतरनेवाले इस महान् उपन्यासकार के इस म्यूज़ियम को देखकर मुझे प्रसन्नता

हुई।' मुझे विश्वास है कि मेरे न रहने पर भी मेरे ये शब्द कालान्तर तक वहाँ उस देश के हृदयपृष्ठ पर अंकित रहेंगे।

इसके बाद सोवियत संघ के लेखक-संघ की लेनिनग्राद शाख़ा में गया। वहाँ उस शाख़ा के मंत्री जी० होलोपोव, कवि वी० तोरोपीजिन से भेंट और वार्ता हुई। मंत्री महोदय ने बताया कि सोवियत संघ में यह शाख़ा द्वितीय है। साहित्य की सभी विधाओं के लेखक, कवि और नाटककार इसके सदस्य हैं। इसका प्रत्येक लेखक कोई विषय चुने या लिखे, वह स्वतंत्र है। किसी पर कोई दबाव या ज़ोर-जबर नहीं है। संघ का कर्तव्य है कि वह लेखकों को एकताबद्ध करे। मंत्री महोदय को छूट है कि वह जीवन के प्रमुख विषयों पर लिखने के लिए लेखकों को अपना सुझाव दे सकते हैं, पर वे उन्हें कोई आदेश नहीं दे सकते। इस शाख़ा के कई भाग हैं, कवियों, उपन्यासकारों व नाटककारों इत्यादि से संबंधित। यहाँ लेखक आते हैं। अपनी समस्याओं पर विचार विनिमय करते हैं। कोई भी लेखक अपनी कृति को ले जाकर शाख़ा के अपने विभाग के लेखकों से उसपर विचार-विनिमय कर सकता है। वहाँ के लोग उन कृतियों की आलोचना-प्रत्यालोचना भी करते हैं, कभी-कभी कोई-कोई लेखक इससे बुरा भी मान जाता है। हाँ, एक बात और मंत्री महोदय ने बताई कि छपने से पहले किसी भी उपन्यास को वहाँ के चार सम्पादक देखते हैं और तब वह छपने को भेजा जाता है। नई कविताएँ और नए उपन्यास पहले मासिक पत्रिकाओं में छपते हैं और फिर पुस्तक रूप में, लेखकों को पहले ही कुछ धन मिल जाता है, संकट की घड़ियों में शाख़ा लेखकों को आर्थिक सहायता भी देती है, दवा-दारू की व्यवस्था भी करती है। सैनीटोरियम भेजने में मदद करती है। ज़रूरत पड़ने पर अर्थहीन लेखक को मासिक वेतन भी देती है और यह भी व्यवस्था करती है कि वह देश को देखें और देखकर लिखें। शाख़ा देश के दूसरे स्थानों के लेखकों से मिलने-मिलाने के अवसर भी प्रदान करती है और सम्पर्क सूत्र भी स्थापित करती है। इसमें लेखकों का क्लब भी है, इस शाख़ा में लेखकों को कमरे भी दिए जाते हैं कि वे वहाँ बैठकर अपना लेखन-कार्य कर सकें। उनके खाने इत्यादि का प्रबंध भी होता है।

इसके बाद कवि महोदय ने हमें बताया कि जब घर में लिखना संभव नहीं होता तब वे यहाँ आकर लिखने का कार्य करते हैं। इन्होंने मंत्री महोदय की बातों का समर्थन किया और बताया कि 'आरोरा' (Aurora) नामक मासिक पत्रिका भी निकाली जाती है। उनकी रचनाएँ भी छापी जाती हैं। प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ भी छपती हैं। नए रचनाकार अपनी रचनाएँ दूसरी पत्रिका में भी छपा सकते हैं, कोई रोक-टोक नहीं है। यह पत्रिका नए रचनाकारों की

मदद करती है। यहाँ से एक वार्षिक पुस्तक भी प्रकाशित होती है, जिसका नाम 'यंग लेनिनग्राद' होता है। पेशेवर लेखकों को भी यहाँ पर सुविधाएँ उपलब्ध हैं। किसानों, मज़दूरों, कॉलेजों, नगरों और गाँवों के नए-पुराने सभी लेखकों को यह अपनी सहायता दिया करती है। इस संघ को यह श्रेय प्राप्त है कि यह कई प्रतिभाशाली नए लेखकों को सामने ला सका है— वे विश्वविद्यालयों से संबंधित हैं और बौद्धिक व्यक्तित्व रखते हैं। कवि महोदय ने साहित्य के विषय में बताया कि वह एक तो नागरिकता-प्रधान होता है और दूसरे काव्यमय होता है, जिसमें परंपरा को अपनाया जाकर अच्छी कविताएँ लिखी जाती हैं। उनकी शाख़ा की सबसे कम उम्र की महिला कवयित्री अलेक्सीव हैं। पाठक उनकी कविताओं को बड़ी रुचि से पढ़ते हैं और उनका बड़ा मान-सम्मान है।
इस महानगर लेनिनग्राद को देखकर मैंने लिखा :

देखा
लेनिनग्राद,

अदेखा सूरज देखा,
सहस्रार से

खिले नगर का
अचरज देखा।

देखा
मानववाद,

अदेखा उत्सव देखा,
जनता से

प्रतिबद्ध काव्य का
सौष्ठव देखा।

मास्को राजनीतिक चेतना का महानगर है। लेनिनग्राद सांस्कृतिक चेतना का कलात्मक महानगर है, दोनों अपने-अपने ढंग के महत्त्वपूर्ण महानगर हैं।

फिर रात को होटल आया और वहाँ से इरीवान (Yere Van) जाने के लिए अर्धरात्रि के बाद लेनिनग्राद से हवाई अड्डे पर पहुँचा। बड़ा सुंदर हवाई अड्डा है। रात को ही हवाई जहाज़ से उड़े। दूसरे दिन सबेरे छः बजे के लगभग इरीवान के हवाई अड्डे पर उतरे। वहाँ से ANI होटल गए। वहाँ के फ़्लैट नं० 7 के कमरा नं० 618 में मैं और श्री हरिदत्त शर्मा एक साथ ठहरे। इस होटल का नामकरण वहाँ के प्रसिद्ध साहित्यकार सदरुद्दीन ऐनी के नाम पर हुआ जान पड़ता है।

दोपहर को मारटिरास सारियान (Martiros Sarian) म्यूज़ियम देखने गया। यह इसी नाम से प्रसिद्ध चित्रकार की यादगार में बनाया गया, इन्हीं के चित्रों का संग्रहालय है। चित्रों को देखता रहा। चित्रों में व्यक्त चित्रकार के दिल और दिमाग़ से निकले रंग रूप में अंकित वहाँ के परिवेश और इसमें जीनेवाले आदमियों को अपने इन्द्रियबोध से पकड़ता रहा। मैं तन्मय और तल्लीन रहा। कलाकार अदृश्य से जैसे बोलता रहा और मैं उसे सुनता रहा। मुझे चित्रों की भावभंगिमायें समझ में आने लगीं। उनका मौन भी सार्थक वाणी बन गया। मैं उस वाणी से विभोर होता रहा। अपने से विसुध मैं उन्हीं में खोया रहा। रंगों का सूक्ष्म तरल प्रवाह प्रकृति के देह की चित्रमयता निरूपित करने में पूर्णतया सक्षम हुआ था। मानव-शरीर की आकृतियों से पौरुष और कर्मठता साकार हुई थी। जहाँ कला अमूर्तन का आभास देती थी, वहाँ भी वह कलाकार के अंतर्मन के गहरे मानवीय बोध को ही व्यक्त करती थी। मैंने उन चित्रों में न आदमी खोया हुआ पाया, न उसका भीतरी और बाहरी परिवेश। कला सफल हो गई थी, आदमी की सेवा में लगकर। उदास आदमी भी आदमी लगा-वह न झील में डूबा कुरूप बादल का टुकड़ा लगा, न कील से लटकता टँगा, चीकट मैला-कुचैला कपड़ा। उदास प्रकृति भी प्रकृति लगी वह मरे हुए कुत्ते की लाश नहीं लगी। आज की अमूर्त कला से भिन्न इस चित्रकार की अमूर्त कला थी। आज तो अमूर्त कला विसंगतियों को उरेहती है और जो नहीं है जो नहीं हो सकता-उसको रूपायित करती है, इसीलिए किसी की समझ में नहीं आती। कोई भी कला जब मानवीय सम्पर्क से वंचित हो जाती है, अन्यथा उसके परिवेश से पलायन कर जाती है और तान्त्रिकों की अथवा अघोरियों की वृत्तियों का विदूषण पा लेती है, तो वह कला नहीं रह जाती, वास्तव में अनाप-सनाप हो जाती है। मैं इस प्रसिद्ध कलाकार की

सराहना करता रहा और उसकी मानवीयता से अभिभूत होता रहा। इनका जन्म 28-2-1880 में हुआ था।

यह म्यूज़ियम तिमंज़िला है। इसमें सारियान की 150 तस्वीरें और ग्राफ़िक्स हमेशा देखी जा सकती हैं। पेरिस में सन् '37 में उनकी चित्रों की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई थी। वह आरमीनिया की विज्ञान अकादमी के सम्माननीय सदस्य सन् 1956 से रहे। सन् 1960 में उन्हें सोवियत संघ का जन-कलाकार होने का पुरस्कार मिला।

म्यूज़ियम से लौटकर होटल आया। लंच लिया, उसके बाद इरीवान से बस द्वारा हम लोग 70 किलोमीटर का रास्ता तय करके वहाँ पहुँचे, जहाँ सेवान झील थी। इसे सागर भी कहा जाता है। यह विशाल है। इसके एक तरफ़ रेलवे स्टेशन है। स्टेशन कुछ ऊँचाई पर है। वहाँ के लोगों ने हमलोगों को अपने स्नेह से भाव-विभोर किया। पानी बरसा, बादलों की फुहार को हमलोगों ने अपने ऊपर लिया। उन्हीं लोगों ने हमें स्वादिष्ट भोजन खिलाया। पेय भी पिलाया। उनके आतिथ्य-सत्कार की याद आज भी ताज़ा है। झील के दूसरी तरफ़ ऊँची पहाड़ी का सिलसिला चला गया है। जल में उठती लहरियाँ अनम्त काल की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म संवेद्य चेतना का नाद-नृत्य कर रही थीं। मैं काल के अंतर्मन में डूबा अपनी धरती का सौंदर्य निहार रहा था। आकाश के आक्रोश में भी वह धीरज नहीं छोड़ती और अपने कर्मठ पुत्रों को आश्रय और अवलम्ब दिए रहती है। मैं खड़ा तो तट पर रहा बड़ी देर तक, परंतु खड़े-खड़े में ही जल के वल्कल वसन पहनकर नाच-नाच उठता रहा। देर हो रही थी। फिर हम लोग वापस चल दिए। मैंने दिन को बिदा दी। उसने हमें बिदा दी। हम फिर उसी रास्ते से अपने होटल आए। रात होटल में बिताई। मैं उस झील के सपने देखता रहा। उसकी मछलियों की कहानी सुनता रहा।

दूसरे दिन 16/5 को सुबह होटल से बाहर निकल आस-पास की सड़कों में टहला-घूमा। दुकानें देखता रहा। दूकानों में भरा माल-मत्ता देखता रहा। आते-जाते लोगों की चाल-चलन देखता रहा। जिसे देखता, उसी के मन में बैठने का प्रयास करता और कुछ-न-कुछ गुपचुप जान लेने का उपक्रम करता। मैं भाषा की सामर्थ्य छोड़कर, भाषा से परे पहुँचकर, केवल भाव-भंगिमाओं से हाव-भाव से, नाक-नक़्शे से, गति-गमन और शरीर-सन्तुलन से उस नगर के निवासियों की चित्तवृत्तियों को जानता-पहचानता रहा और यह निष्कर्ष निकाल सका कि यहाँ के लोग-बाग तन और मन से खुशहाल हैं और दीन-हीन मनोदशाओं के शिकार नहीं हैं।

उन लोगों को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई और मैं आश्वस्त हुआ कि मनुष्य यहाँ भी अपनी गरिमा तो पा रहा है।

साढ़े दस बजे दिन में इरीवान-स्थित बच्चों की चित्र-गैलरी देखने गया। चार साल पहले गैलरी में प्रदर्शनी दिखाने का काम शुरू हुआ था। तब से अबतक साठ प्रदर्शनियों का आयोजन हो चुका है। इस प्रदर्शनी में जिसे हम देखने गए थे, केवल एक स्कूल के बच्चों के बनाए हुए चित्र दिखाए गए थे। अब यह प्रदर्शनी बराबर हुआ करेगी। विदेश के स्कूलों के बच्चों के चित्र भी यहाँ मँगाए जाएँगे और दिखाए जाएँगे। यहाँ से भी रूसी बच्चों के बनाए चित्र प्रदर्शन हेतु विदेश भेजे जाएँगे, वहाँ वे बच्चों के चित्रों की प्रदर्शनियों में दिखाए जाएँगे। इस एक ठोस प्रयास से मैं अत्यंत प्रभावित हुआ। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि सोवियत भूमि में बच्चों की कलात्मक प्रतिभा को बड़े उत्साह और लगन के साथ विकसित किया जा रहा है। सोवियत सरकार समाजवादी चेतना के अंकुरों को अपनी ममता से इस क़ाबिल बना रही है कि वे भविष्य के सिरमौर बनें और उनकी कला से मानव-समाज का कल्याण हो। अन्य देशों में बच्चों की कलात्मक अभिरुचि के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, तभी तो विरले ही प्रसिद्ध होने का अवसर पाते हैं। साधारणतया तो वहाँ कला का भी पूर्णरूपेण शोषण किया जाता है और बचपन में ही प्रतिभाओं को कुण्ठित कर दिया जाता है।

मैंने एक चित्र में एक पेड़ बना देखा। पेड़ में एक लाल फल देखा। उस एक फल को ही तोड़ रहा था एक आदमी, जो घोड़े पर सवार था और घोड़ा था कि ज़मीन से उठा उड़ा जा रहा था। मैं इस चित्र को देखकर स्तम्भित रह गया। उस चित्र का अर्थ लगाने लगा। उससे बालक-चित्रकार की चेतना के अंदर पैठने लगा। निश्चय ही बच्चा अपने परिवेश से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। दृश्य में घोड़ा है। वह पूरी ताक़त से ज़मीन से उठा उछाल की स्थिति में है। बालक ने इस स्थिति में कभी-न-कभी घोड़े को देखा ही होगा। तभी तो वह इस चित्र में आ गया। घोड़ा है तो घुड़सवार होना ही चाहिए, जो घोड़े को अपनी सफलता के लिए इस्तेमाल करे। चुनान्चे घोड़े पर सवार है एक सवार। प्रकृति उदार होती है। पर अपने फल सहज ही नहीं देती। आदमी को कठिन प्रयास करना पड़ता है कि वह फल पा सके। पेड़ ऊँचा है। आदमी उसपर चढ़ सकता था। परंतु नहीं, उस बालक चित्रकार ने आदमी को पेड़ पर नहीं चढ़ाया, क्योंकि उसे सविशेष प्रयास करने का एक जीवंत चित्र खींचना था और ऐसे ही प्रयास का चित्रण उसने घोड़े पर सवार को चढ़ाकर और घोड़े को उछालकर फल की ओर गया

दिखाकर किया। इस कलात्मक बिम्बविधान से एक साधारण से दृश्य में जान पड़ गई और देखने वाला मुग्ध हुए बिना न रह सका।

समाजवादी चेतना का यह प्रारंभिक प्रदर्शन मात्र था। ऐसी चेतना ही तो आगे चलकर बड़े-बड़े असंभव कार्यों को संभव करती है और साहसिक इतनी होती है कि ज्ञान की खोज में अंतरिक्ष में सदेह प्रवेश करती है और संसार को चकित कर देती है।
एक चित्र में हाथी दिखाया गया। बच्चों को हाथी विशेष प्यारा है। हाथी देखने में सबसे बड़ा होता है और अपनी स्थूलकाया से सूंड़ लटकाए हुए चलते-चलते में सब कुछ लपेट लेने की मुद्रा में अजूबा भी लगता है। धूल उड़ाता है, तो अपने और दूसरों को धूल-धूसरित कर देता है। जब सूंड़ में पानी भर-भरकर फुहारें मारता है, तो रिमझिम बरसात कर देता है। जब बड़े-से-बड़े बोझ को पीठ पर लादकर चलता है, तो आँखें देखती ही रह जाती हैं। तब वह पहाड़ ही लगता है। शायद इसी सबको व्यक्त करने के लिए बालक चित्रकार ने हाथी का चित्रांकन किया था। घोड़े कई चित्रों में दिखे। स्वाभाविक है ऐसा अश्व-प्रदर्शन। घोड़े तो सहज में ही दुनिया में हर जगह दिख जाते हैं। फिर सरकस में हाथी और घोड़े तो अपना-अपना कमाल दिखाते ही रहते हैं और बच्चों को सरकस देखना भी बहुत अच्छा लगता है। संभवतः इसीलिए तो बालकों को समाजवादी चेतना में पशुओं को बिम्बित होने का प्रश्रय मिला।

एक दूसरा चित्र, देखते ही अपनी क्रूरता से क्षुब्ध कर देता था। एक घोड़ा था। घोड़े की दुम के बालों से आदमी के सिर के बाल बंधे थे। घोड़ा गति की मुद्रा में था। आदमी ज़मीन में घिसट रहा था। बालक तो स्वभावतः कोमल और दयालु होते हैं। ऐसी निर्दयता उनमें नहीं होती। फिर भी उस बालक चित्रकार में ऐसी प्रवृत्ति के दर्शन हुए। ऐसा क्यों हुआ? मैं सोचता रहा। समाजवादी देश में तो बालकों के प्रति आदमी भी बहुत स्नेह दिखाते हैं और उन्हें अपनी ममता भरपूर देते हैं, तो फिर क्यों ऐसा हुआ कि बालक अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में आदमी के प्रति एकदम अनुदार और बर्बर हो गया? बालक के लिए घोड़ा आदमी से अधिक महत्त्व का हो गया, क्यों? शायद बालक आदमी को, उसके किसी जघन्य अपराध के लिए दंडित कर रहा है। यह समाजवादी समाज के बालक का नैसर्गिक दंड-विधान मालूम पड़ता है। हो सकता है कि बालक ने यह सोचा हो कि उसके देश में आदमी के प्रति वही ऐसा क्रूर बर्ताव कर सकता है, जो व्यक्ति मदान्ध होकर अपनी आदमियत खोकर पाशविक वृत्ति का हो गया हो।

एक दूसरे चित्र में दूल्हा-दुलहिन का चित्रांकन किया गया था। दूल्हा श्वेत शरीर का काला कपड़ा पहने था। दुलहिन लाल ओठों वाली हरे वस्त्र पहने थी। आकर्षक रंग-योजना थी। एक अन्य चित्र में शेर और जेबरा भी देखने को मिले। नदी, नाव, मछली, जाल, तालाब इत्यादि भी बच्चों को प्रिय लगे थे। उन्होंने इनका भी चित्रांकन किया था। एक काला चीता बनाया गया था। उसकी आँखें, मुँह, उसके दाँत विशेष आकर्षक बनाए गए थे। वैसे चीता काला नहीं होता। परंतु, उसे काला बनाकर उसकी आँखों, उसके दाँतों और मुँह को उभारा गया था। उस पशु की बर्बरता साकार हो गई थी।

एक ऐसा भी चित्र था, जिसमें सिर तो स्त्री का और शेष शरीर पक्षी का था। शायद बच्चे के मन में यह आया रहा हो कि चिड़िया भी रहे और स्त्री भी रहे। तो स्त्री के एवज़ में उसका सिर आ गया। बच्चे माँ-बहन की मुखाकृति से ही तो अधिक प्रभावित होते हैं। चिड़िया का उड़ना बच्चों को बहत भाता है। इसलिए माँ हो या बहन वह शेष अंगों से चिड़िया बना दी गई कि उसके ऐसे चित्र से उसकी भावनाएँ दोनों के प्रति व्यक्त हो सकें। न वह माँ-बहन को छोड़ सकता है, न पक्षी को। सिर छोटा और आँखें छोटी और मुँह भी छोटा ही होता है। वह बोलता भी है तो समझ में नहीं आता। माँ-बहन का बोलना प्यार की अभिव्यक्ति करता है। फिर आज के युग में अंतरिक्षयान की यात्राएँ हो रही हैं। बालक मन में ऐसे यान का आकार अभी बन नहीं पाया, इसलिए उसने यान के बजाए स्त्री को पक्षी बनाकर उसे अंतरिक्ष की उड़ान करा दी।

एक गाड़ी में लाल रंग का घोड़ा जुता है। गाड़ी में बैठा है एक लड़का, जो गिटार बजा रहा है। गिटार को खड़ा किए है, सभाले है एक कुत्ता। यहसब साधारणतया नहीं होता। बाल मन ने ऐसा चित्रांकन करके अपनी मनोभावना को प्रकट कर दिया है। बच्चे को कुत्ता प्रिय है। उसे संगीत प्रिय है। उसे घोड़ागाड़ी प्रिय है। कुत्ता उसका प्यारा साथी है। इसलिए वह गिटार बजाता है। दोनों आनंद लूटते हैं और उसका साथी कुत्ता उसके संगीत-समारोह में उसकी सहायता करता है। समाजवादी समाज का बालक संगीत को अपने पूरे परिवेश से जोड़ता है और दूसरों के लिए भी प्रभावशाली बनाता है।

एक बालक ने अपने चित्र में उल्लू बनाया था। साधारणतया आस-पास उल्लू कम दिखाई देते हैं। फिर भी इस बालक चित्रकार ने उसे कहीं-न-कहीं देखा ही होगा, तभी तो वह उसे चित्रांकित कर सका। मैं इस चित्र-प्रदर्शिनी को देखकर अपने देश के बच्चों के बारे में

सोचता रहा। काश, उनकी रचनात्मक प्रतिभा को ऐसे ही विकसति करने के साधन उपलब्ध होते, तो वह अपने परिवेश और देश से जुड़ सकते और उनकी भावनाएँ संस्कारित हो सकतीं। ऐसा नहीं हो पा रहा अपने देश में। तभी तो हमारे देश के बच्चे उच्छृंखल और उद्दण्ड होते जा रहे हैं। केवल स्कूल में जाकर ही वह कभी भी अब सुधर नहीं सकते। उनको ज्ञान तो किताबों से मिल सकता है, परंतु पुस्तकें उनकी चित्तवृत्तियों को दृष्टि और दिशा देकर माता-पिता के गुणों से सम्पृक्त नहीं कर सकतीं। आवश्यकता है इस ओर तुरंत ध्यान देने की।

बारह बजे दिन 'आरमीनियन' चर्च देखने गए। बहुत बड़ा कंपाउंड था। उसमें साफ़-सुथरा और सुरक्षित गिरजाघर था। एक बजे दिन तक देखते रहे। यह गिरजाघर कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट गिरजाघरों से भिन्न था। इस चर्च में वे सब उपहार-जो विभिन्न देशों के इसके मतावलम्बियों से बरसों पहले इसे मिले थे, संगृहीत देखे। अठारहवीं सदी में मद्रास से इसे दो कपड़े के चित्र (दीवाल में टाँगने के) मिले थे। उन्हें देखकर ऐसा लगा कि जैसे हम मद्रास पहुँच गए हों। दोनों नगरों के बीच की दूरी समाप्त हो गई थी।

सवा एक बजे दिन उस स्थल को देखने गए, जहाँ खुदाई करके भू-गर्भ से एक गिरजाघर का अवशेष निकाला गया था। यह ज्वार्थ नोट्ज (zvarth notz) नामक कथीड्रल था। इसके 3 खंड थे। गोलाकार इमारत की शकल में था। इसका फन की शक्ल का गुंबद था। इसकी खुदाई सन् 1905 में शुरू हुई थी। सन् 1937 में इसका म्यूज़ियम स्थापित किया गया। यहाँ मुझे अपने देश की बनी मिट्टी की बड़ी डहरी जैसी एक डहरी भी देखने को मिली। अन्य बरतन भी देखे, जो मिट्टी के ही बने थे। लोहे की चाभियाँ और ताले भी देखे। बिल्कुल अपने यहाँ के जैसे, वैसे ही बड़े-बड़े भारी और मज़बूत जैसे हमारे देश में पहले बना करते थे। पत्थर की बनी ज़मीन पर अंकित सूर्य घड़ी देखी। इसमें गिनती के बजाए आरमीनियन भाषा के अक्षर अंकित थे। इसमें बीच में एक छेद था। मेरे गाँव के मदरसे में सन् '21 में जैसे खपड़े छाए रहते थे, वैसे ही खपड़े यहाँ खुदाई में मिले देखे। पुरानी कारीगरी भी देखने को मिली। पत्थर पर खुदी हुई अंगूरलताएँ देखीं। अलंकरण का शिल्प मन-मोह रहा था। एक बड़ा गड्ढा भी देखा। बताया गया कि इसमें अंगूर से निकाला गया रस संचित किया जाता था और भी अवशेष देखे। रहने के घरों में पत्थरों के बीच में मिट्टी (पकाई हुई) की पाइपलाइन ले जाई गई थी। इन पाइपलाइनों से पानी बहकर आता था, इसके अलावा वहाँ पानी गर्म करने के पहले

के स्थल देखे। तब के ज़माने में आरमीनिया का प्रतीक ईगल था। वह भी एक पत्थर पर खोदकर तब बनाया गया था। अब तक सुरक्षित है।
एक कुआँ भी देखा। वह 50 मीटर की गहराई का था। तब भी इतना ही गहरा था। उसीसे उस गहराई से तब पानी निकाला जाता था।

लगभग दो बजे दिन को हम लोग बराक्का का स्टेटफ़ार्म देखने गए। वहाँ 300 हेक्टर भूमि पर अंगूर की खेती की जाती है। 100 हेक्टर भूमि पर अन्य फलों की खेती होती है। यहाँ चार सौ आदमी रहते हैं, जो किसी-न-किसी रूप में इस फ़ार्म से संबद्ध हैं। कुछ के अपने घर हैं। कुछ फ़ार्म के घरों में रहते हैं। यह फ़ार्म छोटे बच्चों की देख-रेख का पूरा प्रबंध करता है। यहाँ उनके लिए किंडरगार्डन स्कूल स्थापित है। उसे देखा, बहुत-बहुत तरह के खिलौने थे। बच्चों के सोने के लिए व्यवस्थित और सुंदर प्रबंध था। पालनों में स्वच्छ सफ़ेद गद्दे और तकिए लगे थे। औरतें उन बच्चों की देख-रेख कर रही थीं। यह पक्की इमारत थी, दो खण्ड की। हर कमरा सुसज्जित था।
अंगूर का खेत देखने गए। अभी पौधे बड़े न हुए थे। अगस्त में फल आना शुरू होगा। जाड़े में इन पेड़ों को मिट्टी से ढँककर दबा दिया जाता है, ताकि बरफ़ इन्हें मार न डाले।

शाम 7.30 बजे एक 'बैले' देखने गए। यह एक पुराने संगीतज्ञ (कंपोज़र) के जीवन पर आधारित नाट्य प्रदर्शन था। बताया गया कि उस संगीतज्ञ ने जब अपने देश का करुण इतिहास पढ़ा, तो वह असंतुलित मस्तिष्क का हो गया। तुर्कों ने आरमीनिया पर हमला किया और उसे ध्वस्त किया था। उस ध्वंस का इतिहास वेदनामय था। वेदना की तीव्र अनुभूति ने आरमीनिया के उस संगीतज्ञ को पागल बना दिया। इसी मार्मिक घटना को लेकर संगीत-नृत्य-नाटिका लिखी गई थी। उसी नाटिका का प्रदर्शन था। इसमें जनता से एक होकर अपने देश का पुनरुद्धार करने की ललकार और पुकार का अभिव्यंजन हुआ था। हमलोग देखते रहे। संगीत से प्रभावित होते रहे। हमारे हृदय द्रवीभूत हुए। इसके द्वारा, जो सामूहिक नर-संहार हुआ था, वह साकार हो गया था। जलियाँवाला बाग़ का हत्याकांड जब हमें अत्यधिक मर्माहत कर सका, तो यह तो उससे भी बड़ी दारुण और हृदयविदारक घटना थी। हमसब तब इससे क्यों न प्रभावित होते।
'बैले' का स्वरान्त निराशाजनक न होकर मानवीय गुणों का पोषक एवं उत्साहजनक और आशाप्रद था। फिर जनता देश का निर्माण करती हुई दिखाई गई थी। यहसब मंच पर

सामूहिक रूप से दिखाया जा रहा था। इसे राष्ट्रीय बैले की संज्ञा दी गई है। हम अपने देश में अभी भी इसतरह के प्रदर्शन करने की ओर सक्रिय नहीं हुए। हमारे देश की नाट्य और नृत्य-प्रतिभा अभी भी मन बहलाने के लिए ही प्रयुक्त होती है। भविष्य में यदि ऐसा न किया गया, तो हमारा रंगमंच जन-जीवन से कटकर कुछ दिनों में नष्टप्राय हो जाएगा।

रात होटल में रहे।
दूसरे दिन सुबह दस बजे हमने होटल छोड़ा। एक प्रसिद्ध म्यूज़ियम देखने गए। वह इस दिन बंद था। हम उसे न देख सके। वहाँ से लौटकर हम लोग शहीदों का स्मारक देखने गए। कंकरीट का बना था। विशाल आकार का था। वहाँ पर एक ऊँचा होता चला गया, नोकीला होता गया, स्पाइरल की शकल को साकार किया गया था। देखकर हैरत होती थी। ज़ियादा देर तक देखना दूभर था। गरदन पिराने लगती थी। उस कंकरीट के बने स्मारक से लगातार आग की एक लाल लपट निकला करती है। साथ-ही-साथ एक कोमल दर्दभरा संगीत-स्वर भी अनवरत रूप से बजता रहता है। यह स्वर नीचे के खण्ड से उठकर ऊपर आता है। मैंने भी शहीदों को अपनी और अपने देश वासियों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की।

राजदान नदी के तट पर बसा यह इरीवान नगर अपने प्राकृतिक सौंदर्य में अनूठा है। यह अरारात घाटी के उत्तर-पूर्व में स्थिति है। कई बार पदाक्रान्त हो-होकर बार बार जी उठा और जन-जीवन का प्रिय केन्द्र बन चुका है यह नगर। इसी से इसकी शोभा और भी अनूठी है। इसके चारों तरफ़ के खड़े दमदार पहाड़ बरफ़ से ढंके हुए हैं। इसकी नदियाँ भी वही संघर्ष भोगकर प्रवाहित होते-होते अब इसके रूप के अनुरूप ही इसका गुणगान करती रहती हैं। यहाँ के लोग बड़े रंगीन मिज़ाज के दिखे ऊपर से और भीतर से, सौंदर्य का वरण तो कर ही लिया है यहाँ की कामिनियों ने, प्रकृति भी उनके सौंदर्य से सुखदा, फलदा और प्रमदा हो गई है।
मैंने इस मनहर नगर पर भी एक कविता लिखी। वह इस प्रकार है :

आकर्षण का यह नगर
मनोभव की माया से

क्षण-क्षण नूतन,

हृदय हृदय को

मोह मोह कर,
दिक दिगंत को वशीभूत कर,

ज़रा-मरण को जीत चुका है।
इसे जीत कर,

मुग्ध-मगन-मन
नाच रही है मेरी कविता,

परा और अपरा मुद्राएँ
साज रही है मेरी कविता।

रात होटल में बिताई।
17/5 को मैंने टेलीविज़न वालों को अपने विचार रेकार्ड कराए।

फिर सदियन की पेंटिंग देखने गया।
फिर माथेण्डारान (म्यूज़ियम फॉर आल) म्यूज़ियम देखा। प्रभावित हुआ। तमाम लोग देख रहे थे।

शहीदों का म्यूज़ियम भी देखा।
फिर बारह बजकर पचपन मिनट पर दोपहर के समय इरीवान से हवाई जहाज़ पर चढ़कर उड़े। हम लोग दोशाम्बे 6 बजे शाम पहुँचे। दोशांबे नाम के शानदार होटल में ठहरे। सोने के पहले इधर-उधर सड़कों पर चहलक़दमी की। देखते-सुनते रहे। गुलाब-ही-गुलाब, बड़े-बड़े गुलाब, जहाँ देखो वहाँ खिले थे। होटल के कंपाउंड में, होटल से बाहर, वसंत-श्री श्रृंगार किए मन मोह रही थी। इस नगर में भी जादू-जैसा प्रभाव पड़ा।

अठारह मई को होटल से हमलोग सामूहिक फ़ार्म (कोलखोज) देखने गए। इसका नाम था 'कलेक्टिव फॉर्म सेकंड पार्टी कान्फ्रेन्स' यहाँ तेईस किलोमीटर लंबी पानी की नहर थी। इसमें कुल मिलाकर तीन हज़ार व्यक्ति काम किया करते हैं।
एक स्कूल भी इसी के अंतर्गत है। उसे भी देखा। स्कूल में अमीर ख़ुसरो, जेबुन्निसा, हाफ़िज़ और सादी के चित्र देखने को मिले। दीवारों पर टंगे थे। द्वितीय महायुद्ध के वीरों के चित्र भी लगे हुए थे।

यहाँ हमने खाना खाया। नान की बड़ी रोटी खाने को मिली। बड़ी मुलायम थी। कई दिनों के बाद भारत छूटने पर अब रोटी के दर्शन हुए थे। जी ख़ुश हो गया। चाय पीने को मिली। साथ में किशमिश भी दी गई। मैंने ख़ूब खाई। बादाम के शकल की एक नमकीन भी सामने आई। वहाँ से लगभग ढाई बजे दोपहर हमलोग वापस आए।
तीन बजने पर हमलोग फिर घूमने-फिरने गए।

एक बड़ा सुंदर म्यूज़ियम है। यहाँ अक्टूबर-क्रान्ति के पहले की हालत का दृश्य दिखाया गया। फिर उस क्रान्ति के बाद की स्थिति दिखाई गई। पहले वहाँ की स्थिति दयनीय थी। न सड़कें थीं। खेती-पाती की दुर्दशा थी। बिजली भी अप्राप्य थी। बाद की स्थिति ख़ुशहाली की तस्वीर प्रस्तुत करती है। सब तरह के सुधार किए गए हैं। शोषण समाप्त हो गया है। शिक्षा केंद्र स्थापित हो गए हैं। खेती में आमूल परिवर्तन किया गया है। जनता के स्वास्थ्य की फिकर की व्यवस्था की गई है। बेकारी समूल नष्ट कर दी गई है। बिजली का प्रकाश दूर-दूर तक पहुँचाया जा चुका है। सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था अमल में लाई गई है। इस क्रांति के बाद ही तो ताजिकिस्तान की यह रिपब्लिक बनी है। वहाँ के वीरों के चित्र देखने को मिले।
यहीं एक किताब की दुकान में गए। वहाँ संस्कृत के एक बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' का रूसी भाषा में अनुवाद देखने में आया। इस ग्रंथ के प्रणेता अभिनवगुप्त थे। यह काव्य से संबंधित पुस्तक है। इसे देखकर मालूम हुआ कि हमारे देश के साहित्य में रूसियों की गहरी रुचि है और वे लोग हमारे साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। कभी यह सोचा भी न होगा किसी ने कि यह ग्रंथ रूसी भाषा में अनूदित भी होगा। इसका अनुवाद बड़े परिश्रम से करना पड़ा है।

फिर वहाँ से निकलकर एक चायख़ाना में चाय पी। यह चायख़ाना जनसाधारण के लिए बने हैं। तख़्त पड़े हैं। कुर्सियाँ लगी हैं। तख़्त पर साफ़-सुथरा बिछावन बिछा है। लोग आते हैं। बैठते हैं। चाय पीते हैं। नाश्ता करते हैं। दाम देते हैं। फिर चले जाते हैं। मुझे यहाँ बैठे-बैठे अपने यहाँ की सड़क के किनारे की छोटी-छोटी दुकानें याद हो आईं। उसी माहौल में हमने यहाँ चाय पी और वह नान रोटी बड़े स्वाद से खाई।
एक कृत्रिम झील बनाई गई है। वहाँ गए, उसे देखा, सुंदर थी। उसमें नाव खेने की प्रतियोगिता चल रही थी। ख़ूब खिले हुए गुलाब देखे। क़रीब साढ़े सात बजे शाम होटल वापस आए। अब भी सूरज आसमान में था। शाम हमारे यहाँ की जैसी नदारद थी। धूप चमक रही थी। अजीब-सा लगा था।

उन्नीस मई को दोशाम्बे में स्थित ताजिकिस्तान का ऐतिहासिक म्यूज़ियम देखने गए। दस बजे से लेकर ग्यारह बजे दिन तक देखते रहे। पसंद आया।
सवा ग्यारह बजे यहीं एक फ़िल्म देखी। ताजिकिस्तान के ऊपर थी। इसमें ताजिकिस्तान के बरफ़ीले पहाड़ देखे। उनके सौंदर्य से प्रभावित हुए। भेड़ों के झुंड देखे। बैजनी रंग के फूलों की बहार देखी। सेब देखे, पेड़ों से लटके बड़े-बड़े। मुँह में पानी भर आया। औरतें-आदमी उन्हें तोड़-तोड़कर टोकरियों में रख रहे थे। शिक्षा संस्था दिखाई गई थी। लड़के-लड़कियाँ और शिक्षक थे। कई कमरे थे। प्रयोगशाला दिखाई गई। अंगूर तोड़ना भी फ़िल्म में ही देखा। एक स्वास्थ्य केंद्र भी आँखों के सामने आया। बढ़िया था।

इसी फ़िल्म में नाच-गाना भी होता दिखाया गया। वहाँ की संस्कृति का प्रतिबिम्बन हुआ। यूरोपीय आधुनिकता से वह अब भी विनष्ट नहीं हुई।
औरतों को कुरता, इज़ार (पायजामा) और टोपी पहने देखकर कश्मीर याद आ गया।

इसी फ़िल्म में उत्तरी ताजिकिस्तान के फ्रेस्कोज भी दिखाए गए। बड़े ही रंगमय हैं।
नाचती हुई महिला को लँहगा लहराते देखा। अपने यहाँ की गाँव की औरतें याद आईं। यह साम्य देखकर एकता महसूस की।

कसीदाकारी का संस्थान भी प्रदर्शित हुआ। मख़मल पर काम किया जा रहा था सुनहरे तारों से। देखकर उन हाथों और आँखों की सराहना करना नहीं भूला, जो तुरत फुरत सपाटे से जादू

ऐसी कारीगरी कर देती थीं। मुग्ध होता रहा। अपने यहाँ ऐसा देखने का अवसर मुझे नहीं मिला था। मैंने तो अपने गाँव के दरज़ी को कपड़े की नाप लेने पर भी छोटा बनाते ही देखा। एक बैले देखा। याद नहीं रहा कि उसमें क्या देखा? मैंने उस समय कुछ भी नोट नहीं किया था।

इससे उसका नाम तक भूल गया।
उन्नीस मई को ही केंद्रीय फ़िरदौसी पुस्तकालय गए। बताया गया कि यहाँ बहुत किताबें हैं। संख्या शायद दो मिलियन बताई गई थी। यह तो याद है कि बहुत बड़ा पुस्तकालय है। इसमें एक अलग प्रकोष्ठ स्थापित किया गया है, जहाँ पूर्वीय देशों की प्राचीन पुस्तकों की मूल पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं। यह सन् 1928 में स्थापित किया गया था। यहाँ ही मुझे सदरुद्दीन ऐनी के प्रसिद्ध उपन्यास 'दाखुन्दा' का हिंदी-अनुवाद देखने को मिला। अनुवाद किया है राहुल सांकृत्यायन ने। पुस्तकालय औपचारिक तरीक़े से सन् 1933 में जनता के लिए खोल दिया गया था।

यहाँ फ़ारसी-अरबी और ताजिक भाषा की अत्यन्त प्राचीन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित देखने को मिलीं। यहाँ 2000 से अधिक दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रहालय है।
यहाँ की नवीं शताब्दी के तबरिस्तान का इतिहास लिपिबद्ध देखने को मिला। यह देश तब कैसपियन सागर के तट पर बसा था।

फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ का इतिहास अलबरूनी का लिखा देखा।
फ़िरदौसी की कृति, 13वीं सदी की, 'शाहनामा' देखी। इसे तीस वर्ष में लिखा गया था। यह ग़ज़नवी को जब बेंचा गया था, तब एक प्याला चाय का दाम ही मिला था। यह पुस्तक मूल 'शाहनामा' की सोलहवीं शताब्दी की प्रतिलिपि है।

इस पुस्तकालय को देखने स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री ज़ाकिर हुसैन आए थे। यहाँ के विज़िटर बुक में उनके हस्ताक्षर हैं। अन्य आए कई भारतीयों की रायें और दस्तख़त देखे। स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा के भी हस्ताक्षर देखे। कैफ़ी आज़मी, मज़रूह सुल्तानपुरी, एहतेशाम हुसेन और डी० पी० धर भी यहाँ आए थे। उन्होंने भी अपनी राय लिखी थी और अपने दस्तख़त बनाए थे।

अमीर ख़ुसरो का दीवान देखा। 'ख़मसा' एक प्रकार की उनकी शाइरी है।

फिर वहाँ से हमलोग मोटर द्वारा एक घाटी देखने गए। यह वहाँ से बहुत दूरी पर स्थित थी। सड़क ख़ूब उम्दा और चौड़ी थी। मोटरें भी बढ़िया थीं। वे चली तो चलती चली गईं और रुकी तो वहीं पहुँचकर रुकी। यह घाटी बड़ी रमणीक लगी। सैलानियों का मन-पसंद भ्रमण स्थल यही घाटी है। तमाम लोग तमाम जगह देखे। वारजोब (Varzob) नदी के दोनों ओर लोग-बाग पूरे रास्ते भर खाना बनाते और मछली मारते दिखे। महिलाएँ भी संगसाथ में कहीं-कहीं दिखीं। बच्चे और जवान भी मज़ा मार रहे थे। कहीं कोई मछली पकड़ने के लिए बध्यान लगाए बैठा दिखा। यह नदी वेगवती है। इसका पानी साफ़ और निर्मल है। इसके दोनों ओर पहाड़ हैं। ऊँचे चले गए ये सुदृढ़ प्रहरी बर्फ़ की टोपी लगाए हैं। इनमें कहीं-कहीं ग्लैशियर भी दिखाई दिए। बादल तो हर क्षण, सिर पर इन पहाड़ों के चलते-फिरते नज़र आते हैं। सड़क सीमेंट की है और वक्राकार चली गई है, मोड़ लेती हुई। सभी सैलानियों को कामकाज से फ़ुरसत थी। नदी का किनारा, किनारे पर लगे पेड़, वह भी छायादार और तब फिर कौन चूकता कि वहाँ न पहुँचता और पिकनिक न मनाता। मौसम सीने से लगा लेनेवाला था। मज़ा आ गया। इस घाटी में पहुँचकर मैं घाटी का हो गया।
हमलोग नदी के सीने पर आधी दूर तक चले गए। होटल के बड़े छज्जे पर या कहें बुर्ज पर दिन के 4 बजे भोजन किया। नीचे नदी के पानी की पायल बज रही थी। ऊपर हमारे साथी आरमीनिया के अंगूरों की बनी शराब ढाल रहे थे और मस्ती से गा-गुनगुना रहे थे। यहाँ गर्मा-गर्म भोजन मिला। फिर नानरोटी मिली। मक्खन, पनीर, खीरा, हरी धनियाँ, पालक, चुकंदर सबकुछ खाने को मिला। यूरी ने रूसी भाषा में लिखी अपनी कविता हम लोगों की प्रशस्ति में सुनाई। मुझे भी अपनी एक कविता सुनानी पड़ी। गीत था, माँझी न बजाओ बंशी। गा तो न सका पर सुना गया। अंग्रेज़ी में अनुवाद भी करता गया। दुभाषिया रूसी में अनुवाद करता रहा। फिर आग्रह हुआ तो दूसरा गीत सुनाना पड़ा। वह था 'धीरे उठाओ मेरी पालकी।' दुभाषिया थे मिस्टर सुस्कोव। हमारे साथी पं० हरिदत्त शर्मा ने विशेष ज़ोर डाला था, तब मैं सुना पाया था। वे भी आँखों से उमरख़ैयाम हो रहे थे। मैं भी पद्माकरी मनःस्थिति में था। ख़ूब मज़ा आया।

7 बजे शाम हमलोग वापस होटल आए।

फिर हम चार जने एक ओपेरा देखने गए जो 7.30 बजे से शुरू हुआ था। समझ में तो आया नहीं। लेकिन बिना समझे भी आरकेस्ट्रा सुनने में मज़ा आता रहा। एक व्यक्ति खड़ा होकर दोनों हाथ फैलाए वादक कलाकारों को इशारे से लय और ध्वनि का उतार चढ़ाव बताता जाता था। उसके हाथ भी बड़ी सतर्कता से उठते-गिरते मंद और क्षिप्र होते थे।

फिर होटल आए। सोए-साए।

बीस मई को दस बजे दिन होटल छोड़कर वक्ष घाटी (Vaksh Valley) आए। इस घाटी में बसा आधुनिक नगर नूरेक है, जो सन् 1962 में अपने इस नए रूप में अस्तित्व में आया। पहले तो यह एक छोटा गाँव ही था। इस नगर में मेयर सुकूरोफ बोइनारजाब हैं। यहाँ हाइड्रो इलैक्ट्रिक इन्स्टालेशन के उच्चतम अधिकारी हैं—मुखामीदेपेव वालीरीनि-जामोविच। इतना बड़ा नाम है कि उच्चारण करने में दिक्कत होती है और समय भी पर्याप्त लगता है। काम बड़ा है शायद इसीलिए नाम भी बड़ा है। हमारे यहाँ तो दो-दो अक्षरों के छोटे-छोटे नाम ज़ियादातर हैं। इसलिए बोलने में आसानी होती है। यहाँ बारह बरस पहले नाम-मात्र को आबादी थी। लोग भेड़ें पालते और ऊन का व्यापार करते थे। अब तो यहाँ एक हज़ार पाँच सौ मीटर की लंबाई घेरकर नई इमारतें तामीर कर दी गई हैं। अब तो चौबीस हज़ार की इसकी जनसंख्या है। यहाँ तीस स्कूल हैं। सात नर्सरी और किंडरगार्डन मदरसे हैं। पुस्तकालय भी हैं। स्टेडियम्स भी हैं। अस्पताल तो हैं ही। पैलेस ऑफ कल्चर भी है। सिनेमाघर भी हैं। व्यापार होता है। तमाम दुकानें हैं। श्रमिक लोग भी कविता और साहित्य की रचना करते हैं। पेशेवर कवि नहीं हैं। कवि और कलाकार ताजिकिस्तान के अन्य स्थानों से भी वहाँ आते हैं। मासिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। यहाँ नूरेक से संबंधित तीन सौ पुस्तकें हैं, जिन्हें कवियों और साहित्यकारों ने लिखा है। यहाँ के लोग दूसरे नगरों के नाट्य प्रदर्शनों में जाकर भाग लेते हैं और अपनी कला को जनप्रिय बनाते हैं।

फिर हमलोग इस नगर की सोवियत के दफ़्तर गए। वहाँ चाय मिली। मिनरल वाटर मिला। हमलोगों ने पिया।

यहाँ की सोवियत, जब कमीशन के अंतर्गत निर्माण की अनुमति देती है, तब यहाँ निर्माण किया जाता है। यहाँ श्रमिकों को, कर्मकारों को खाद्य-सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती हैं।

यहाँ की शिक्षा, सुरक्षा और स्वास्थ्य की पूरी ज़िम्मेदारी यहाँ की सोवियत लिए है। काम सुचारु रूप से चलता है। पुलिस विभाग भी यहाँ की सोवियत के अंतर्गत काम करता है।
सन् 1930 की 16वीं पार्टी काँग्रेस ने मास्को में निर्णय लिया था कि ताजिकिस्तान में हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर स्टेशन स्थापित किया जाए। बाँध भी बाँधे जाएँ, नदी के पानी से असिंचित भूमि को सींचने के लिए। सन् 1936 में ताजिकिस्तान से सुझाव दिए गए इस संबंध में।

यहाँ गैस भी घरों में ईधन के लिए मिलती है। नगर की सफ़ाई का उम्दा प्रबंध है। कोई संक्रामक रोग न फैले, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इस काम के लिए 6 डॉक्टर तैनात रहते हैं। 25 आदमी माध्यमिक मेडिकल योग्यता के काम करते हैं। 24 आदमी यहाँ की सफ़ाई का प्रबंध करने में जुटे रहते हैं। यहाँ का जल-कल विभाग अपने कर्मचारियों की नियुक्ति करता है और वहीं से उसे सफलतापूर्वक चलाकर पानी दिया करते हैं।
हर चौथे साल यहाँ की 81 चुनी हुई डिपुटी सोवियतें बनती हैं।

वयस्कता की आयु 18 वर्ष की है।
पिछले चुनाव में 12000 लोगों ने मतदान दिए।

यह नूरेक नगर 300 मीटर की ऊंचाई पर बसा है।
कृत्रिम झील 10 किलोमीटर लंबी है।

लगभग नौ हज़ार हेक्टर भूमि की सिंचाई होती है।
यहाँ से ही अल्युमिनियम संस्थान को बिजली दी जाती है। दूसरे औद्योगिक संस्थानों को भी यहीं से बिजली पहुँचाई जाती है।

सन् 1962 से सन् 1966 तक इस नगर के निर्माण और यहाँ की सड़कों के बनाने का काम चल रहा था। पहला विद्युत् संचार मई सन् 1973 में शुरू हुआ था।
वक्ष नदी लगभग 400 मीटर लंबी है।

नूरेक सागर (कृत्रिम झील) में हमें मोटर बोट से घुमाया गया। काफ़ी दूर तक हम गए।

यहाँ से बाँध बाँधने के पूरे क्षेत्र को हमने देखा। इसका बेस 1600 मीटर है और शिखर 1800 मीटर का है।

यहीं होटल में हमने खाना खाया।
फिर 7 बजे शाम दोशाम्बे वापस पहुँच गए।

21/5 को दोशाम्बे स्थित ताजिकिस्तान के लेखक संघ गए। साढ़े दस बजे से पौन बजे तक यहाँ रहे।
यहाँ गुलरुखसारा व गुलचेहरा नाम की दो कवयित्रियों से भेंट हुई। रुखसारा युवा पीढ़ी की हैं। गुलचेहरा अधिक उम्र की हैं।

मीरशकर लंबे क़द के पुरानी पीढ़ी के प्रौढ़ साहित्यकार हैं। मोमिन कनपारा कवि हैं। इन्होंने लेनिनग्राद पर नए शिल्प की एक कविता लिखी है। यह ईरान भी हो आए हैं। वहाँ इन्होंने पी०ई०एन० के जलसे में शिरकत की थी। इन दोनों से भी वहीं भेंट हुई।
मिखाइल मीरशकर ने लेखक संघ के बारे में बहुत-सी बातें बताई। उन्होंने कहा कि उनके लिए भारत जाना-पहचाना देश है। उनके देश से और भारत से बहुत पुराने व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। उनका देश भारत के प्रति अत्यंत कृतज्ञ है कि उनके यहाँ की काव्य-पुस्तकें बंबई में मुद्रित और प्रकाशित हुई तब, जब उनके यहाँ छापाख़ाना नहीं था। उनके यहाँ अमीरख़ुसरो देहलवी की शताब्दी मनाने की योजना बनी है और वह बड़े धूमधाम से मनाई जाएगी। महाकवि ग़ालिब और कश्मीर के कवि ग़नी उनके यहाँ भी प्रख्यात हैं। इन कवियों की भाषा इनके देशवासियों को समझ में आ जाती है, क्योंकि इन कवियों की भाषा इनके देशवासियों की भाषा के निकट पड़ती है। स्वर्गीय मोहम्मद इक़बाल भी इनके यहाँ पढ़े जाते हैं।

मीरशकर ने आगे बताया कि उनके यहाँ का इतिहास हज़ारों साल पुराना है। वह गौरवपूर्ण है और संघर्षमय भी है। उनके यहाँ 180 साल तक समानी स्टेट रही। यह रेनेसाँ का वक़्त था। परंतु दुश्मनों के आक्रमण से यह स्टेट ख़त्म हो गई, विभाजित हो गई। लोग-बाग आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगे। इस समय की सभ्यता का कवि ताजिक के फ़ारसी साहित्य का पिता अबूअली था। इनकी कविता में दर्द व्यक्त हुआ है।

फिर उन्होंने और बताया कि अक्टूबर-क्रांति के पहले उनके यहाँ पाँच प्रतिशत शिक्षा थी। क्रांति के बाद शिक्षा सबको उपलब्ध हुई है। उनके यहाँ लोग बड़े भावुक और संवेदनशील हैं। उनके यहाँ के साहित्य के संस्थापक रुदाकी हुए हैं। उन्हें ईरान भी स्वीकार करता है। अब वे लोग हज़ारवें साल की जुबली मनाने वाले हैं। नई कविता के संबंध में उन्होंने कहा कि वह मुक्त-छंद में लिखी होती है। लेकिन वह जनता में लोकप्रिय नहीं हो सकी। उनके बाद श्री मोमिन कनयात ने बताया कि वह युवा कवि हैं। मास्को में एक लाख की जनता, टिकट ख़रीदकर कवियों की कविताएँ सुनती है। वे कवि जनता के विरुद्ध नहीं होते। कोई कवि किसी शेर या पशु को कविता सुनाकर जन-जीवन से विमुख होने का दम नहीं भरता। उनके यहाँ की जनता कविता पसंद करती है और कविता के 'वादों' से घबराती है। हाल में दस दिन तक काव्य-समारोह मनाया गया था। इस समारोह में विभिन्न सोवियतों से आए हुए चौंतीस कवियों ने काव्य-पाठ में भाग लिया था। वे जगह-जगह गए भी थे और वहाँ उन्होंने जनता को अपनी कविताएँ सुनाई थीं। जनता उनकी काव्य-पुस्तकें पढ़ने के लिए ललकती रहती है।

मैं तो इसके पहले यही समझता था कि हम लोग ही अपने देश में कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया करते हैं और कहीं दूसरे देश में ऐसे व्यापक स्तर पर ऐसे आयोजन होते ही नहीं। श्री मोमिन कनयात के मुँह से इसके विपरीत बात जानकर बेहद हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह जानकर दूनी-चौगुनी ख़ुशी और हुई कि वहाँ की जनता काव्य-संग्रह ख़रीदती और पढ़ती है। हमारे यहाँ की जनता सम्मेलनों में काव्य-पाठ तो सुन लेती है, परंतु दाम लगाकर काव्य-संग्रह नहीं ख़रीदती। यह दुर्भाग्य की बात है।
इसके उपरांत हम अपने होटल आए। वहाँ रहे। डिनर खाया।

फिर ढाई बजे दिन हम ताजिकिस्तान की विज्ञान अकादमी के प्राच्य अध्ययन संस्थान गए। वहाँ के सहायक डायरेक्टर श्री सैयद मोरादोव हैं। वह दर्शनशास्त्र के डॉक्टर हैं। वहाँ के भारत और पाकिस्तान विभाग की ज़िम्मेदारी श्रीमती शरफ़जान पोलोतावा पर है। वह भाषा-विज्ञान की विशेषज्ञ हैं। उन्होंने उर्दू और फ़ारसी भाषाओं पर अनुसंधान किया है।
कामरेड गुफारोव भी उन्हीं की विद्वत्ता और विशेष योग्यता के हैं।

मालूम हुआ कि अध्ययन-संस्थान की स्थापना अप्रैल, सन् '70 में हुई थी। इस संस्थान में 69 व्यक्ति काम में लगे हैं। इनमें से कुछ टेकनिकल योग्यता के आदमी हैं, कुछ रिसर्च स्कॉलर हैं।

इस संस्थान के 6 भाग हैं। एक भाग अफ़गानिस्तान से संबंधित है। दूसरा भाग ईरान से, तीसरा भारत और पाकिस्तान से, चौथा अरब देशों से, पाँचवा टेक्सटालोजी से और छठवाँ सभी प्राच्यलिपियों से संबंधित है। इसका सोवियत भूमि में तीसरा स्थान है। यहाँ लगभग बारह हज़ार पुस्तकें हैं। दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ हैं। इसने अबतक किताबों की सूची चार भागों में छापी है। यहाँ कामरेड उसमान अकबर से संबंधित विभागों में काम करते हैं। उर्दू में यह महत्त्वपूर्ण काम चालू है। यह उसमान साहब एक साल तक विशाखापट्टनम में रह आए हैं। यह हम लोगों से उर्दू में बोलते रहे।

हिन्दी में यहाँ काम करते हैं श्री उसमान मुमताज, यह लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के स्नातक रहे हैं। सन् 1968 में यहाँ आए हैं। भाषा-विज्ञान में यह काम करते हैं। यह यहाँ हिंदी भाषा के क्रियापदों का ताजिक और तुर्की भाषाओं के क्रियापदों से तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं। मुझे इनसब लोगों से मिलकर भारी प्रसन्नता हुई।

फिर वहाँ से हमलोग 3.30 बजे दिन पायनियर पैलेस देखने पहुँचे। वहाँ लड़के लड़कियों ने हम लोगों का स्वागत किया। हमने उनमें रुचि दिखाई। नतीजा यह हुआ कि वे और हम आत्मीय हो गए। उन्होंने एक गीत भी गाया। पायनियर बच्चे-बच्चियाँ हम लोगों के देश के बालचरों से ज़ियादा ज़िम्मेदार लगे। अभी से समाजवादी उद्देश्य की महत्ता समझते हैं और इसके लिए अपना समय-श्रम सहर्ष देते हैं।
वहाँ से होटल आए। रात 12 बजे श्री ग़ुलाम रब्बानी ताँबा साहब ने अपने होटल के कमरे में हमें फोन करके बुलाया और मीरशकर के दिए हुए पेय से हमारा अभिनन्दन किया। हम लोग दिलचस्प बातें करते रहे और एक-दूसरे के चेहरे देखते रहे। किसी के मुँह पर दुनियाई उदासी न थी। सब हँसमुख और प्रसन्न थे। रात में हमलोग बैले की तरह खिल उठे थे।

मैंने दोशाम्बे पर छोटी-सी एक कविता लिखी
हँसती पंखुरियों की बस्ती

खिले गुलाबों की
दिलकश देखी

दोशीज़ा नगरी दोशाम्बे की

22/5 को हमलोग 10 बजे दिन दोशाम्बे से मास्को के लिए हवाई जहाज़ पर उड़े। पाँच घंटे में मास्को पहुँचे। फिर रूसिया होटल में ठहरे। मैं बारहवें खंड के कमरा नं० 738 में श्री हरिदत्त शर्मा के साथ ठहरा। आज कहीं नहीं गए। कमरे में श्री सुरेंद्रकुमार आए। वह वहाँ अनुवाद का काम करते हैं। युवा हैं। सहृदय हैं। उनसे बातें होती रहीं। उन्होंने भी मास्को के वातावरण की और वहाँ के लोगों की तारीफ़ की। खुले दिल से की। उनके कहने में कोई बनावटी भाव न था। उन्होंने बताया कि उनकी लड़की रात 12 बजे भी अपने कॉलेज के समारोह से अकेली वापस लौटने में कोई ख़तरा नहीं महसूस करती। वहाँ के लोग बेहूदा हरकतों के आदी नहीं हैं। वहाँ की लड़कियों की आबरू पर आँच नहीं आने पाती। उन्होंने मुझे हर तरह की सुविधा देने का आश्वासन दिया और चाहा कि मैं कुछ दिन और वहाँ उनके घर में रहकर बिताऊँ और मास्को को पूरी तरह से पहचान लूँ। पर मैं इसके लिए तैयार नहीं हुआ। मुझे अपना वीसा बनवाना पड़ता और यह बात इस प्रोग्राम के बाहर की हो जाती। मैं न रुका।

वहीं उसी कमरे में 15-17 साल से मास्को में रह रहे मधु जी भी आए। उनसे बातें होती रहीं। वे भी ख़ूब बात करते हैं। जो कुछ कहते हैं, साफ़ कहते हैं। छिपाते कुछ भी नहीं। मास्को की बातें हुईं। उन्होंने भी कुछ ऐसा नहीं बताया कि वहाँ हर आगन्तुक के पीछे 'ख़ुफिया' लगा दी जाती है और लोग बात करते डरते हैं। मैंने पूछा भी। पूछने पर भी यही कहा कि ऐसी बात नहीं है। ऐसा होता तो वह क्या, कोई भी भारतीय वहाँ रह ही नहीं सकता। मिलने-जुलने में रोक-टोक नहीं है। बात करने की मनाही नहीं है। कर्तव्य कीजिए, खाइए-पीजिए और अच्छी ज़िंदगी बिताइए। कविता के बारे में मैंने उनसे बातें की। उन्होंने बताया कि रूसी लोग पुश्किन को बहुत बड़ा कवि मानते हैं और उनकी कविता पर तो जी-जान से फ़िदा हैं। पुश्किन रूसी भाषा का माहिर कवि है। काव्य का सौंदर्य उसकी कविता में भरा पड़ा है। जब मैंने आधुनिकता की बात चलाई, तो उन्होंने भी बताया कि नए कवि आधुनिकता का काव्य लिखते हैं, पर जनता आधुनिकता से प्रभावित नहीं होती। आधुनिकता से और प्रतिबद्धता से जानी दुश्मनी है। इसीलिए समाजवादी कवि आधुनिकता के व्यक्तिवादी अथवा अहंवादी कथा और शिल्प को नहीं अपनाते।

श्री सुरेंद्र कुमार ने यह बताया कि मास्को में पेट्रोल, गैस, खाने की चीज़ें, बच्चों की चीज़ें और मकान बहुत सस्ते हैं। ट्रांसपोर्ट की सहूलियत ख़ूब अच्छी है। मेडिकल विभाग बड़ा

सक्रिय और कर्तव्यनिष्ठ है। बड़ी जल्दी डॉक्टर मिल जाता है। फ़ोन होते ही 15 मिनट के अंदर वह आ जाता है। पूरी लगन से काम करता है।

रात होटल में ही खाना हुआ। सोए।
23/5 को साढ़े दस बजे दिन हम लोग टैक्सियों से विश्व के महान् उपन्यासकार लियो तालस्ताय का स्मारक देखने के लिए रवाना हुए। वह स्थान मास्को से 180 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। रास्ते में उससे कुछ पहले तूले शहर मिला। वह अच्छा-ख़ासा शहर दिखाई दिया। सड़क से देखा तो दोनों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे पक्के मकान दिखे। सड़क भी साफ़-सुथरी और काफ़ी चौड़ी थी। ट्राम चलती नज़र आई। एक महिला को चलाते देखा। मुझे तो उसे देखकर लखनऊ के हज़रतगंज की याद आ गई।

मास्को से यसयाना पोलियाना तक साँप के पेट की तरह चिकनी सपाट एक जैसी, पक्की, चौड़ी सड़क अबाध रूप से सरकती चली गई है। कहीं ऊँची उठती है, तो कहीं नीचे झुकती है। बहरहाल बिना अंजर-पंजर हिलाए वह यात्रियों को निकल जाने देती है। इसके दोनों तरफ़ दूर-दूर तक, हाल की उगी हरी फ़सल की मख़मली बिछावन, खेतों में आर-पार बिछी दिखी। खेतों में मेड़ तो कहीं दिखी ही नहीं। उन्हें ट्रैक्टर से जोता बोया जाता है। हाँ, कई जगह मुझे 10-12 महिलाएँ झुके-झुके निराई करती हुई नज़र आईं। उनके कपड़े न फटे थे न गंदे। वह शरीर से भी पुष्ट और स्वस्थ थीं।
हवा बढ़िया थी। मोटर की खिड़की खोले हवा का संस्पर्श करते हुए हम चले जा रहे थे। आँखों में वहाँ का पूरा-पूरा दृश्य समाया चला जा रहा था। सड़क के दाएँ-बाएँ खेतों के किनारों पर, थोड़ी-थोड़ी दूर पर रहायसी पक्की 'काटैजेज' दिखीं। चूँकि सर्दी बहुत पड़ा करती है और बर्फ़ गिरती है, इसलिए वे झोपड़ियाँ सब तरफ़ से बंद और सुरक्षित दिखीं। लेकिन कई-कई खिड़कियाँ और द्वार थे उनमें। शायद दोहरे-दोहरे शीशे लगे थे उनमें। ऊपर ढाँचा इनका लकड़ी का बना था। इनके पास व इर्द-गिर्द सेहेन की कुछ भूमि पड़ी थी, जिसमें पेड़-पौधे लगे दिखे। वहीं कहीं-कहीं मुझे मुर्गियाँ घूमती नज़र आईं। लेकिन उस समय मुझे इन झोपड़ियों में आदमी का पुतला तक नहीं दिखाई दिया। सम्भवतः तब सभी व्यक्ति काम-काज पर गए रहे होंगे। बच्चे पढ़ने गए होंगे। सब झोपड़ियाँ निश्चय ही बंद दिखी थीं। उनमें भीतर बाहर आदमी के साँस की कोई हरकत नहीं नज़र आई। हाँ, जब शाम को लौटे और

फिर उन्हें देखते हुए निकले, तो खिड़कियों से भीतर जलती हुई बिजली का प्रकाश दिखाई अवश्य दिया था। इससे समझ सका था कि उनमें लोग-बाग अपने परिवार के साथ रहते हैं।

खेतों में हमारे यहाँ की तरह जानवर छूटे हुए नहीं दिखे। खेतों के इधर-उधर मुझे कोई तार खिंचे हुए नहीं मिले। किसी भी तरह का कोई ख़तरा फ़सल के चर जाने का नहीं था। हमारे यहाँ खेत की रखवाली करनी पड़ती है। ऐसी कोई बात मैंने वहाँ नहीं देखी।
इतने बड़े रास्ते में आते-जाते में मुझे एक जगह अपने यहाँ का धैर्य-धन जानवर गदहा वहाँ दिखाई दे ही गया। समाजवादी देश में उसका वहाँ होना इस बात का प्रमाण था कि वह मूर्खता का अवतार ही था।

एक जगह एक बूढ़ा घास लादे घोड़े पर सवार आता दिखा। एक बालक अपनी पीठ पर घास का पुलंदा लटकाए राह चलते दिखा। एक जगह एक बूढ़ी औरत खेत में गाय का दूध बाल्टी में दुहती हुई नज़र आई। बैल तो एक भी न दिखाई दिया। अन्य पशु भी वहाँ मुझे नज़र नहीं आए।
यासयाना पोलियाना का रकबा बहुत बड़ा है। लंबे बर्च के पेड़ सघन संख्या में लगे हैं। फर के पेड़ भी हैं। नाला भी दिखाई दिया। जंगल है वहाँ। इसी के अंदर दूर चलने पर तालस्ताय का एक मौरूसी घर मिला। उसी से हटकर, क़रीब में ही उनका अपना रहायशी मकान है। पूर्वजों के घर के अंदर मैं नहीं गया। उन्हीं के मकान में मैं गया। बाहर लंबे-चौड़े जूते अपने दोनों पैरों में बाँधने पड़े थे। उन्हें पहनकर ही अंदर चलकर प्रत्येक कमरा देखते रहे थे हमलोग। सीढ़ी थी। उससे चढ़कर ऊपर के कमरों में गए थे। फ़र्शों पर काठ जड़ दिया गया है। उसी पर होकर चलना पड़ता है। कहा गया कि यह मकान उसी हालत में ज्यों-का-त्यों अब भी है, जैसा तालस्ताय के ज़माने में रहा था। उनकी प्रत्येक चीज़ उसी जगह रखी है, जहाँ जब-तब रखी थी। दीवारों पर उनके और उनके तमाम कुटुम्बियों के फोटोज टंगे हैं। कोई किसी उम्र का है, कोई किसी उम्र का। कोई किसी अवसर का है। कोई किसी अवसर का। बड़े भव्य हैं ये चित्र। सोफिया उनकी पत्नी थीं। उनके भी अनेकों चित्र थे। वह जवानी में बड़ी सुंदर दिख रही थीं। तालस्ताय की चाची ने उन्हें और उनके बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह अपनी चाची को बहत मानते थे। उन्हीं के साथ रहते थे। चाची का कमरा अलग था। अन्य लोगों के कमरे भी अलग थे।

सब सुसज्जित हैं। हरेक में हरेक रहनेवाले व्यक्ति की तमाम चीज़ें यथास्थान रखी हैं। उनके कपड़े टंगे हैं। हाथ की घड़ियाँ टंगी हैं। घुड़सवारी का सामान, जूते इत्यादि भी सुरक्षित हैं। जो उपहार तालस्ताय को समय-समय पर लोगों से मिले थे, वे भी वहाँ मौजूद हैं। पुराने ढंग का ग्रामोफ़ोन भी उनमें से एक है। एक बड़ी-सी घड़ी एक जगह रखी है। उन कमरों में वहाँ फर्नीचर भी हैं, जो तब वहाँ था। हाँ, कुछ-न-कुछ मरम्मत कर दी जाया करती है, ताकि वह नष्ट होने से बचा रहे।
तालस्ताय के पुत्र ऐण्ड्री ने अपनी माँ की मूर्ति बनाई थी। वह वहाँ है। उनका बाजा पियानो भी है। वह पुश्किन के दूर के रिश्तेदार होते थे।

एक अलग प्रकोष्ठ उसी मकान में इसलिए था कि वहाँ तालस्ताय आए हुए व्यक्तियों से गंभीर बातें करते थे। वहीं वह अपनी रचनाएँ पढ़ते थे।
उन्होंने सन् 1895 में अपने उपन्यास 'रिसरेक्शन' के परिच्छेद एंटेन चेखव को पढ़कर सुनाए थे।

वह रूसी लोक-संगीत अत्यधिक पसंद करते थे।
दो वर्ष की उम्र में उनकी माँ मरीं।

छः वर्ष की उम्र में उनके पिता चल बसे।
इनकी पत्नी सोफिया ने इनके उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' की पाण्डुलिपियाँ सात बार हाथ से लिखी थीं।

इनका उपन्यास 'रिसरेक्शन' दस वर्ष में लिखा गया था। छः बरस में लिखा गया था 'युद्ध और शांति'। चार साल में पूरा हुआ था लोकप्रिय उपन्यास 'अन्नाकरीना'।
बताया गया कि उनके इस मकान में उनकी 22 हज़ार पुस्तकें हैं। इन सबको उन्होंने पढ़ा था। तालस्ताय ज़बरदस्त पढ़ाकू थे। वह कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

वह अपने यहाँ के किसानों और मज़दूरों को बहुत प्रिय थे। वे उनका बहुत आदर करते थे। वे लोग अकेले और संगीसाथियों के साथ तालस्ताय से अकसर मिलने, बातें करने, अपनी

समस्याएँ बताने और उचित सलाह लेने आते थे। तालस्ताय भी उनसे घिरे रहने में अपने को धन्य समझते थे।

मुझे यह सब देखने-सुनने के बाद महसूस हुआ कि तालस्ताय एक बड़े ज़मींदार क़िस्म के शिक्षित बौद्धिक व्यक्ति थे और उनकी रुचि साहित्य में थी ही। अपने समय को वह अच्छी तरह से परखते थे। तब चर्च और बड़े भू-स्वामियों का युग था। वहाँ के खेतिहर शोषित थे। जाबिन के भौतिक मूल्यों का पालन नहीं होता था। स्त्रियाँ पति की दासियाँ थीं। शिक्षा अल्पतम थी। विकास और निर्माण न्यूनतम था। दिल के सहृदय होने की वजह से तालस्ताय जन-सम्पर्क से जनवादी उपन्यासकार बने और भू-स्वामियों की पोलें खोली। उनके सजीव और सटीक चित्र खींचे। वहाँ की किलबिल करती जनता भी अपने पूरे परिवेश के साथ सटीक व्यक्त हुई है उनके उपन्यासों में। जीवन की जीवंत और गर्हित दोनों ही झाँकियाँ मिलती हैं। तालस्ताय जनता से प्रतिबद्ध होते चले गए। वह समाजवाद से प्रतिबद्ध नहीं थे। उनकी विचारधारा सुधारवादी थी। वह आदर्शवादी थे। तभी तो वह अंत में घरबार छोड़कर चले गए और एक स्टेशन में अनजान मर गए। उन्हें उस जीवन से घृणा हो गई जिसे वह जीते आए थे और जिसे वहाँ की जनता जीने के लिए विवश थी। उनके लिए कोई दूसरा रास्ता ही नहीं बच रहा था। वह सक्रिय रूप से राजनैतिक चेतना के आदमी न थे। भावुक थे इसलिए किसी को मजबूर नहीं कर सकते थे कि वह लाज़मी तौर से अच्छा जीवन जिए और शोषण न करे। वह समाजवादी थे। उनकी मानवता लाचार मानवता थी। वह क्रान्तिकारी कार्यक्रम से उद्भूत और संवर्धित मानवता नहीं थी।

उन्होंने अपनी वसीयत में यह लिखा था कि उनकी क़ब्र पर न तो पत्थर लगाया जाए, न उसे पक्का बनाया जाए। वह उन्हीं की मनोकामना के अनुसार आज तक मिट्टी की साधारण-सी बनी है। उसके चारों तरफ़ लंबे बर्च के पेड़ खड़े हैं।

यहाँ का सारा प्रबंध सरकार करती है। एक युवती अंग्रेज़ी में यहसब बताती थी। उसे हरेक बात जैसे कंठस्थ थी। हमारे साथ के सहयोगी श्री सहालनवीस ने उससे कई बातें पूछीं, जिन्हें वह बता सकी। तालस्ताय अपने अंतकाल से पूर्व जो पुस्तक पढ़ रहे थे, उसका वह पृष्ठ भी उसने बता दिया। मैं तो चकित रह गया। मैं उस युवती का नाम भूल गया हूँ। फिर भी उसके प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि छुट्टी के दिन भी अपने घर से आकर हम लोगों के साथ वहाँ गई और घंटों चक्कर लगाती रही और तालस्ताय के विषय में पूरी जानकारी देती रही।

उसने हमलोगों से पूछा कि तालस्ताय हम लोगों को बहुत प्रिय हैं क्या? तो हम लोगों ने उसे बताया कि वह बहुत पहले से हमारे देश में पहुँचकर प्रिय हो चुके हैं। हमारा देश भी खेतिहर देश है। इसलिए भी तालस्ताय हमारी जनता को प्रिय हैं। वह भी तो खेतिहरों के कथाकार हैं। धर्म हमारे यहाँ भी बुरी तरह से अनपढ़ जनता को जकड़े है। इसलिए भी धर्म से उद्धार पाने के लिए भी हमारे यहाँ तालस्ताय के उपन्यास कई पीढ़ियों से पढ़े जाते हैं। उस युवती को संतोष हुआ। उसने फिर पूछा कि क्या भारत में दास्तोवस्की के उपन्यास नहीं पढ़े जाते? क्या वह उपन्यासकार लोकप्रिय नहीं है? हमने बताया कि दास्तोवस्की युवा पीढ़ी को प्रिय हैं। पुरानी पीढ़ी के भारतीयों में वह प्रिय नहीं हो सके। लेकिन हमने इस उपन्यासकार की महत्ता स्वीकार करते हुए यह भी बताया कि हम अभी हाल में ही तो इस उपन्यासकार के म्यूज़ियम को देखकर यहाँ देखने आए हैं।

इस स्थान में लोगों की भीड़ लगी रहती है। स्थल भी रम्य है। एक झील है। दर्पण की तरह निर्मल उसमें चार बतख़ें तैर रही थीं। वे बिलकुल दुग्ध धवली थीं। मुझे तो कलहंस याद आ गए थे उन्हें देखकर। न धूल है कहीं-न धुआँ। न शोर न गुल। बाहर होटल है। एक बुकस्टाल भी था। वहाँ इस स्थान से संबंधित चित्र और पुस्तकें भी मिलती हैं। रूसी भाषा में हैं। अंग्रेज़ी में भी हैं। लोग लेते हैं, पैसे देते हैं और प्रसन्न प्रसन्न वापस जाते हैं।
हमने यह स्थान पौने आठ बजे छोड़ा। रास्ते में कई घंटे लगे। रात ग्यारह बजे होटल में सोए। खाना वहीं से शाम को चलने से पहले खा आए थे। भूख न थी। इससे होटल में डिनर नहीं लिया।

24/5 का दिन हमें मिला था कि हमलोग मास्को में ख़रीद-फ़रोख़्त कर लें। हमने यही चाहा था। यही हुआ भी। परंतु पानी बरसने लगा। मैंने और ताबा साहब ने श्री आर०एन० व्यास के साथ कुछ दुकानें देखीं। बच्चों की मशहूर दूकान में भी गए। बच्चों के साथ खिलौनों, कपड़ों, तमाम तरह-तरह के सामान से वह खचाखच भरी थी। सब तरह की भीड़ थी। ठेलमठेल थी। हम लोगों को ख़रीदते देखते रहे। अच्छा लगा कि समाजवादी शहर में बच्चों के प्रति इतना ध्यान तो दिया जाता है। हम अपने बच्चों की ओर वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रखते जो हमें रखना चाहिए। हम उन्हें अक़्ल से ख़ारिज समझते हैं। हम उनकी भावनाओं की क़तई परवाह नहीं करते। हम उन्हें बकरी के बच्चों की तरह रखते हैं बंदरों की तरह मारपीट से सीधा करते हैं। उन्हें सताते हैं और अपनी तरह बनाने का धर्म निबाहते हैं। हम यह नहीं देखते कि उसकी

रुचि किस तरह की है? इसका परिणाम यह होता है कि बच्चा न अपने परिवेश से जुड़ पाता है; न हमसे आत्मीय हो पाता है, न उसकी प्रतिभा का विकास होता है, न वह देश को अपना देश समझता है। वह तो वैयक्तिक इकाई बनाकर अपने स्वार्थ का जीवन जीने के लिए तैयार भर कर दिया जाता है। खिलौने निर्जीव अवश्य होते हैं, परंतु वे बच्चों की प्रवृत्तियों को संस्कार देते हैं और अपने माध्यम से पूरे देश के परिवेश से जोड़ते हैं और उनमें देश-प्रेम की नींव डालते हैं। खिलौने बेकार नहीं होते। निर्जीव होकर भी वह सबसे अधिक ममता और प्यार देते हैं बच्चों को। बेचारे बालक की हरतरह की गुस्ताख़ी बरदाश्त करते हैं। जहाँ फेंक दिए गए पड़े रहते। तोड़ दिए गए तो उफ़ तक नहीं करते। फिर उठा लिए गए तो फिर जी उठते हैं। उसी दिल से बच्चों को बहलाते हैं, जिस दिल से वह पहले-पहल बहला सके थे। उनका स्नेह कम नहीं होता। मैंने भी कुछ चीज़ें ख़रीदी। फिर शाम को 6 बजे होटल में नोबस्ती न्यूज़ एजेन्सी वालों की तरफ़ से हम लोगों का डिनर था। मैं देर से पहुँचा, पानी बरस रहा था। दूकान में सौदा लेने में देर हो गई। फिर टैक्सी न मिल सकी। एक उदार रूसी ने हमें भीगता देखकर हमपर कृपा की और हमें होटल तक छोड़ गए। हम उसे किराया देने लगे, तो उसने नहीं लिया। शायद वह हमें भारतीय समझकर हमसे सहृदयता व्यक्त कर रहा था। हम उसके आभारी हुए। जब डिनर की मेज़ पर पहुँचे, तो कुछ लोग चले गए थे। हमने डिनर खाया। बातें की। यह वहाँ से प्रस्थान की बेला थी। रात को ही होटल से मास्को के हवाई अड्डे पर पहुँचना था, इसीलिए आख़िरी बार जी भरकर सब को देख लेना चाहते थे। फिर आने का अवसर मिले न मिले। श्री सुरेंद्र कुमार थे। पं० हरिदत्त शर्मा वहीं उनके यहाँ रुककर पोलैंड और पूर्व जर्मनी जाने का प्रोग्राम बनाए थे। इससे वह उधर उनके यहाँ गए और हमलोग कारों में बैठकर हवाई अड्डे गए। रात में वहाँ वायुयान से उड़कर सबेरे पहर दिल्ली पहुँच जाना था। 25/5 तक हम वहाँ रह सकते थे, पर 26/5 को वहाँ से कोई हवाई जहाज़ दिल्ली न जाता था, इसलिए 24 और 25 मई के बीच की रात को ही हम वहाँ से चलते कर दिए गए।

हमारा यान सीधे दिल्ली न जा सका। मौसम ख़राब था। धूल-धुन्ध छाई थी दिल्ली के आसपास कि उसका वहाँ उतरना असंभव था। इसलिए दिल्ली के पहले ही उसे आदेश हुआ कि वह वहाँ न आए। मरता क्या न करता। चालक उसे कराँची हवाई अड्डे पर लाया। वहाँ हम उतरे। एक बड़े से हाल में ठहरे रहे। चाय-पानी का प्रबंध भी न था वहाँ। हमारे यान की ओर से भी प्रबंध किया जाना जल्दी में असंभव था। वह लोग कर ही रहे थे कुछ-न-कुछ इंतिज़ाम कि एक घंटा में सूचना आ गई कि दिल्ली साफ़ है चल दो। हम ख़ुश हुए। सब फिर उड़े और दिल्ली में आ धरे सकुशल। वहाँ संबंधी आए थे। उन्होंने राहत की साँस ली। फिर

हमने मातृभूमि के दर्शन किए और सबसे मिले। यह 25/5 याद रहेगी विशेष रूप से कि इस दिन हम कराँची के हवाई अड्डे पर उतरे थे, जहाँ हम दुश्मन थे। इस दिन हम वहाँ से दिल्ली सही सलामत आ गए। इस दिन हमने एक ऐतिहासिक यात्रा समाप्त की थी और अपने देश के प्रति अधिक कर्तव्यनिष्ठ होकर लौटे थे। मैं कई दिन तक दिल्ली में ही अपने दामाद के यहाँ रहा। 27/5 को प्रेस कांफ्रेंस हुई। उसमें अंग्रेज़ी में अपनी बात कही गई। मैंने हिंदी में अपने ढंग से वह सबकुछ संक्षेप में कहा, जो मुझे कहना था। मैंने एक लेख भी लिखा 'समाजवादी समाज में लेखक का दायित्व।' इसे मैंने 'सोवियत भूमि' में दिया। यह लेख 'जनयुग',

'जनशक्ति', 'आज' आदि कई जगहों के अख़बारों में छपा।
आगरा गया। वहाँ भी अपनी इस यात्रा का विवरण सुनाया।

फिर अपने शहर बाँदा आया। यहाँ भी एक सभा में मैंने अनुभव सुनाए। यही सब बातें अपने लोगों को बताईं, जो बातें मैंने इस सफ़रनामें में लिखी हैं। प्रश्नों के समय लोगों ने मुझसे पूछा कि क्या मैं रूस में किसी नागरिक के घर गया और उसका घरू-पारिवारिक जीवन देखा और यह जानने का प्रयास किया कि गृहस्थी कैसे चलती है? मैंने उत्तर में कहा कि यह तो मैंने नहीं किया। हमारे प्रोग्राम में यह नहीं था। मैं लोगों की इस जिज्ञासा को समझता हूँ। ऐसा प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है। इसका उत्तर साक्ष्य-सहित मिलना चाहिए था। मैं न दे सका। इसका दोषी मैं नहीं, वह न्यूज़ एजेंसी है, जिसने हमारी यात्रा का प्रोग्राम बनाया था। हो सकता है कि यदि हम ज़ोर देते और कहते, तो वह हमें किसी भी नागरिक के घर ले जाते और उसका घरू जीवन दिखाते। किंतु इतना कुछ देखना-दाखना था कि इस ओर ध्यान ही नहीं गया और यह जानकारी न हो सकी। लेकिन एक बात इस संबंध में कह दूँ, आवश्यक है।

मैं जानता हूँ कि कोई व्यवस्था क्यों न हो, सबकुछ पूरा-का-पूरा जीवन व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसकी वजह यह है कि लोग-बाग अभी भी अपने दैनिक घरू जीवन में अपने पहले के संस्कारों से लिप्त रहकर ही उन्हीं के मुताबिक अपना आचरण करने के अभ्यस्त हैं। पहले के संस्कार जल्दी नहीं जाते। वे टूटते हैं, पर कई दशकों में। इसलिए मैं मानकर चलता हूँ कि रूसी नागरिक का घरेलू जीवन वैसा ही न होगा, जैसा रूस का बाहरी जीवन जैसे मैंने वहाँ देखा है, लेकिन इससे रूस की समाजवादी व्यवस्था को बुरा नहीं कहा जा सकता। वह व्यवस्था भरपूर प्रयास करती रहती है कि प्रत्येक नागरिक का घरेलू जीवन भी सुखी और

सम्पन्न हो। तभी तो अब वहाँ आवश्यक वस्तुएँ सुलभ कर दी गई हैं। रहने के लिए मकान दिए जा रहे हैं। सबको काम दिया जा रहा है। सबके स्वास्थ्य की देखरेख की जा रही है। बच्चों की पूरी तरह से निगरानी की जा रही है। बुढ़ापे में पेंशन दी जाती है। बीमारी में दवा। और जहाँ तक सवाल है मियाँ बीवी का, वह भी अपनी ज़िम्मेदारियाँ समझते हैं और पारस्परिक व्यवहार में एक-दूसरे का ख़याल रखते हैं। इस पर भी अगर न पटे, तो तलाक़ ले लें और अपना घरेलू जीवन अपनी स्वेच्छा के अनुसार चलाएँ। सरकार घर के अंदर घुसकर उन्हें एक-दूसरे का क्रीतदास नहीं बनाए रख सकती। क्या हमलोग अपने घरों में तनाव में नहीं रहते? क्या हमलोग नहीं लड़ते-झगड़ते? क्या हम अपने भाई-भतीजों के प्रति उतने ही सहृदय होते हैं, जितने अपने बच्चों के प्रति? तो बुराइयाँ तो घर-घर में रहेंगी ही, चाहे वह घर समाजवादी का हो, चाहे ग़ैर-समाजवादी का। यह तो प्रत्येक नागरिक पर निर्भर करता है कि वह किस हद तक अपना घरेलू जीवन सुखी और सम्पन्न बनाए। इसलिए इस संबंध में जानकारी हासिल भी कर लेता, तो भी बात साफ़ न हो पाती।

अंत में एक बात और कहूँगा, हो सकता है कि मैंने जिन व्यक्तियों और स्थानों के नाम दिए हैं, उनके उच्चारण मैं न समझ सका होऊँ और यहाँ उन्हें ग़लत लिख गया होऊँ। वे और पाठक मुझे क्षमा करेंगे। मैं बाद को पता लगाकर सही कर दूँगा।

*****

स्रोत : पुस्तक : बस्ती खिले गुलाबों की (पृष्ठ 7-46) रचनाकार : केदारनाथ अग्रवाल प्रकाशन : साहित्य भंडार इलाहाबाद संस्करण : 2010

This page is intentionally left blank

शिक्षा संवाद
2023, 10(2): 145
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

कविता

# मैं जीवन में कुछ कर न सका

हरिवंशराय बच्चन

मैं जीवन में कुछ कर न सका!

जग में अँधियारा छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,

मैंने जलकर दी आयु बिता, पर जगती का तम हर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

अपनी ही आग बुझा लेता,
तो जी को धैर्य बँधा देता,

मधु का सागर लहराता था, लघु प्याला भी मैं भर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

बीता अवसर क्या आएगा,
मन जीवन भर पछताएगा,

मरना तो होगा ही मुझको जब मरना था तब मर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

*****

स्रोत : पुस्तक : बच्चन के लोकप्रिय गीत (पृष्ठ 38) रचनाकार : हरिवंशराय बच्चन प्रकाशन : हिंद पॉकेट बुक्स संस्करण : 2004

**संपर्क**
**शिक्षा संवाद**
**RZ-673/135, गली न. 19A, साध नगर, पार्ट -2, पालम कालोनी, नई दिल्ली 110045.**
**दूरभाष - 09868210822. (सम्पादक), ई मेल - SHEAKSHIKSAMWAD@GMAIL.COM**